॥ओ३म्॥
योग साधना
एवं
योग चिकित्सा रहस्य
स्वामी रामदेव

प्रकाशक : **दिव्य प्रकाशन**
दिव्य योग मन्दिर (ट्रस्ट)
कृपालुबाग आश्रम, कनखल
हरिद्वार-249408, (उत्तरांचल)

ई-मेल : divyayoga@rediffmail.com
वेबसाइट : www.divyayoga.com
दूरभाष : (01334) 244107, 240008, 246737
फैक्स : (01334) 244805

पूर्व-संस्करण : 3,00,000 प्रतियाँ

वर्तमान संस्करण : 1,00,000 प्रतियाँ, (परिवर्द्धित एवं संशोधित संस्करण)

मुद्रक : **साई सिक्यूरिटी प्रिंटर्स लिमिटेड**
152, डी.एल.एफ. इण्डस्ट्रियल एरिया, फरीदाबाद--121003 (हरियाणा)
दूरभाष : 0129-2257743, 2270309, 2272277 फैक्स : 0129-2256239
ई–मेल : saipressindia@yahoo.com

वितरक : **डायमण्ड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि.**
एक्स-30, ओखला इण्डस्ट्रियल एरिया, फेज-II, [illegible]ली-110020
फोन : 011-41611861, फैक्स : 011-41611866
ई–मेल : sales@diamondpublication.com
वेबसाइट : www.diamondpublication.com

मूल्य : **Rs. 125/-**

HINDI - 0123

ISBN 81-7525-497-1

समर्पण

त्वदीयं तुभ्यमेव

क्रान्ति के अग्रदूत, महान् स्वतन्त्रता-सेनानी, जिनका सर्वस्व देश, धर्म एवं संस्कृति के उत्कर्ष के लिए पूर्णत: अर्पित था, जिन्होंने अंग्रेजी दासता से भारतमाता की विमुक्ति के निमित्त, स्वतन्त्रता की उद्घोषिका 'विश्वज्ञान' मासिक पत्रिका के संचालन-प्रकाशन द्वारा वीर क्रान्तिकारियों एवं समग्र युवा-वर्ग को राष्ट्रहित के लिए आत्मबलिदान करने का प्रेरक सन्देश दिया, लॉर्ड हार्डिंग बमकाण्ड के मुख्य अभियुक्त रासबिहारी बोस जैसे वीर क्रान्तिकारी पुरुष ने संकट के दिनों जिनका आश्रय लिया, जिनका सम्पूर्ण तपोमय जीवन भगवत्–आराधना, योग-साधना एवं राष्ट्रदेव की सेवा में निवेदित था, उनके द्वारा सन् १९३२ ई० में संस्थापित हरिद्वार के कृपालुबाग आश्रम में स्थित **'दिव्य योग मन्दिर'** के मुख्य लक्ष्य भूमण्डलीय जनता के आरोग्य-लाभ, अध्यात्म-ज्ञान एवं योग-प्रशिक्षण आदि सेवाकार्यों को सम्पादित करते हुए मैं इस तुच्छ योगकृति को उन्हीं ब्रह्मलीन महर्षि **पूज्यपाद राष्ट्रसन्त श्रद्धेय स्वामी** श्रीकृपालुदेवजी महाराज की पावन दिव्य स्मृति में श्रद्धा-भक्ति-सहित समर्पित करता हूँ।

विनयावनत

स्वामी रामदेव

प्रकाशकीय

पूज्यपाद स्वामी रामदेवजी के इस महान्, अनमोल एवं लोकप्रिय पुस्तक-रत्न **'योग-साधना एवं योग-चिकित्सा-रहस्य'** का अति अल्प समय में पच्चीसवाँ संस्करण योगसाधक एवं साधिकाओं के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें अतीव हर्षानुभूति हो रही है। सन् २००२ ई० में इस कृति का प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ था। उस समय अनुमान लगाना कठिन था कि आगामी दो वर्षों में ही लाखों लोग इसको सहर्ष स्वीकार कर हमारे उत्साह एवं सेवाकार्यों में सहभागी बनेंगे। अब और भी उत्तम कोटि कें कागज पर बहुरंगी छपाई के साथ यह संस्करण निकाला जा रहा है। फोटो भी दोबारा खिंचवाकर दिये जा रहे हैं, जो पूर्व-संस्करणों के चित्रों से अधिक स्पष्ट एवं आकर्षक हैं। इतने परिवर्तन, संशोधन और मुद्रण-व्यय की वृद्धि के बावजूद पुस्तक के मूल्य पर ध्यान रखा गया है, जिससे अधिकतम लोग इससे लाभान्वित हो सकें।

योग एक पूर्ण विज्ञान है, एक पूर्ण जीवन-शैली है, एक पूर्ण चिकित्सा-पद्धति है एवं एक पूर्ण अध्यात्म-विद्या है। योग की लोकप्रियता का रहस्य यह है कि यह लिंग, जाति, वर्ग, सम्प्रदाय, क्षेत्र एवं भाषा-भेद की संकीर्णताओं से कभी आबद्ध नहीं रहा है। साधक, चिन्तक, वैरागी, अभ्यासी, ब्रह्मचारी, गृहस्थ कोई भी इसका सान्निध्य प्राप्त कर लाभान्वित हो सकता है। व्यक्ति के निर्माण और उत्थान में ही नहीं, बल्कि परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व के चहुँमुखी विकास में भी यह उपयोगी सिद्ध हुआ है। आधुनिक मानव-समाज जिस तनाव, अशान्ति, आतंकवाद, अभाव एवं अज्ञान का शिकार है, उसका समाधान केवल योग के पास है। योग मनुष्य को सकारात्मक चिन्तन के प्रशस्त पथ पर लाने की एक अद्‌भुत विद्या है, जिसे करोड़ों वर्ष पूर्व भारत के प्रज्ञावान् ऋषि-मुनियों ने आविष्कृत किया था। महर्षि पतंजलि ने अष्टांग योग के रूप में इसे अनुशासनबद्ध, सम्पादित एवं निष्पादित किया। इसी अष्टांग योग का उपदेश और अभ्यास पूज्य स्वामीजी अपने प्रवचन एवं योग-प्रशिक्षण में करते-कराते हैं। उनका निष्कर्ष है कि स्वस्थ व्यक्ति और सुखी समाज का निर्माण केवल योग की शरण में जाकर ही हो सकता है।

योग केवल कन्दराओं में जीवन जीनेवाले वैरागियों, तपस्वियों एवं योगाभ्यासियों की विद्या नहीं है, बल्कि सामान्य गृहस्थ के लिए भी उसकी अतीव आवश्यकता है। यह कितना आश्चर्य का विषय है कि दो सौ वर्ष पुरानी ऐलोपैथी चिकित्सा-पद्धति में फँसकर हम अपना आर्थिक, शारीरिक एवं मानसिक शोषण कराने को तो सहज में तैयार हो जाते है, लेकिन करोड़ों वर्षों से भी पुरानी उस योगविद्या के प्रति उदासीन रहते हैं, अनभिज्ञ रहते हैं, जो एक प्रामाणिक ही नहीं, वरन् निःशुल्क चिकित्सा-पद्धति भी है।

यदि योग सिर्फ एक रहस्यमयी विद्या होती, तो योगिराज कृष्ण युद्धभूमि में इसका उपदेश अर्जुन को क्यों देते? योगाचार्य स्वामी रामदेवजी ने गहन गुफाओं में दम तोड़ रही इस विद्या को भारतीय जनमानस में स्थापित करके महान् उपकार का कार्य सम्पादित किया है। अतः वे देश के नहीं, अपितु विश्व के करोड़ों लोगों की श्रद्धा एवं आस्था के केन्द्र हैं।

योग एवं आयुर्वेद-सहित प्राचीन अध्यात्मविद्या की शून्य से शिखर तक के आरोहण की यात्रा में आप सबका जो सहयोग मिला, उससे हम सहज ही उत्साहित और आश्वस्त हैं। आशा है, आपके निरन्तर सहयोग, सद्भाव, श्रद्धा एवं समर्पण से देव-संस्कृति का अभियान निरन्तर उत्कर्ष की ओर गतिशील होता रहेगा।

पच्चीसवें संस्करण पर विशेष :

हमें अतीव प्रसन्नता है कि भारतीयों में प्राचीन ऋषि–परम्परा के प्रति गौरव व स्वाभिमान बढ़ता जा रहा है, निश्चित ही भारत–भाग्योदय का समय आ गया है। इसका प्रमाण है विगत मात्र तीन वर्षों में ही करोड़ों लोग योग को अपने जीवन में अपनाकर दूसरों को योग–मार्ग पर बढ़ने के लिए प्रेरित कर रहे हैं।

अत्यल्प समय में ही इस **'योग- साधना एवं योग- चिकित्सा रहस्य'** पुस्तक की बारह भाषाओं में लाखों की संख्या में छपना अपने आप में सुखद अनुभूति एवं संसार की एक आश्चर्यतम घटना या परमात्मा की लीला ही कही जा सकती है। पुनः, प्रबुद्ध पाठकों का आभार एवं धन्यवाद करते हुये यह कहना चाहूँगा कि सांस्कृतिक, आध्यात्मिक और सामाजिक जागरण के इस पुनीत अनुष्ठान में हमें आपका प्रेम एवं स्नेह उसी तरह सतत प्राप्त होता रहेगा, ऐसा हमें दृढ़ विश्वास है।

आचार्य बालकृष्ण

आत्मनिवेदन

अखिल ब्रह्माण्ड के स्वामी परमदेव, सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा, जिनकी ममतामयी करुणा से यह सम्पूर्ण जगत् आनन्दोत्सव मना रहा है, जो प्राणिमात्र को सुख, शान्ति एवं समृद्धि प्रदान कर रहा है, उस अन्तर्यामी ईश के प्रति मैं प्रतिपल नतमस्तक हूँ, जिसने मुझ जैसे अकिंचन जीव को अपना आनन्दमय आश्रय प्रदान कर मेरे जीवन को अध्यात्ममय बनाया।

परमगुरु परमात्मा की कृपा एवं पूर्वजन्म के शुभ संस्कारों के कारण मैंने लगभग चौदह वर्ष की अवस्था में ही महर्षि दयानन्द सरस्वती के वेदभाष्य को छोड़कर सम्पूर्ण साहित्य का अध्ययन किया, जिसके फलस्वरूप मेरे बाल-हृदय में आत्मदर्शन एवं वेदाध्ययन की प्रेरणा हुई और मेरा जीवन-प्रवाह श्रेयपथ की ओर मुड़ा। दैवेच्छा से अध्ययन करते हुए ही मैं पन्द्रह-सोलह वर्ष की आयु में गृहत्याग कर वेदज्ञ, आध्यात्मिक, आत्मज्ञानी गुरु के अन्वेषण में निकल पड़ा और भगवान् ने अपार करुणा करके आत्मद्रष्टा, श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ, ऋषिवर आचार्य बलदेवजी महाराज का पावन सान्निध्य प्राप्त कराया। इन्हीं महान् आचार्यप्रवर ने कृपा कर मुझ अबोध बालक को पाणिनीय व्याकरण-सहित उपनिषद्, दर्शन एवं वेद-वेदांगों की शिक्षा प्रदान की तथा मुझे सच्चा ब्राह्मणत्व प्रदान कर जीवन को ब्रह्माभिमुख बनाया।

मैं तो यही समझ पाया हूँ कि मेरे जीवन में जो भी शुभ है, वह परमपिता परमात्मा की कृपा एवं गुरुजनों के आशीर्वाद का प्रतिफल है। महर्षि पतंजलि, गुरु गोरखनाथ आदि योग–परम्परा के सभी ऋषि–मुनियों को वन्दन एवं प्रणाम करता हूँ, जिनकी कृपा से योग का यह पारम्परिक ज्ञान हमें प्राप्त हुआ।

गुरुकुलीय शिक्षा पूरी होने पर वन्दनीय गुरुवर ने अपने ही पावन सान्निध्य में मुझे गुरुकुल का आचार्यत्व ग्रहण करवाया, लेकिन विधाता परमपिता परमेश्वर को मुझसे कहीं अन्यत्र सेवा करवानी थी। इसके बाद मैंने एक अन्य गुरुकुल किसनगढ़–घासेड़ा में भी आचार्यत्व का भार सँभाला। परन्तु पिता परमेश्वर मुझे कहीं और ही ले जा रहे थे। गुरुकुलीय सतीर्थ्य सखा, साधना–रत एवं परोपकारशील विद्वान्, पूज्य आचार्य बालकृष्णजी के साथ गंगोत्री के पावन धाम पर गुफाओं में योगाभ्यास करते हुए, उनके साथ मिलन हुआ। धीरे-धीरे परमात्मा ने हम सब गृहत्यागी बाल ब्रह्मचारियों को एक साथ जोड़ दिया। मिलन के क्रम में प्रकाण्ड विद्वान् योगाभ्यासी साधक, सतीर्थ्य, पूज्य आचार्यश्री मुक्तानन्दजी भी आश्रम के आरोग्य, अध्यात्म एवं शिक्षण आदि सेवाकार्यों में संलग्न हो गये।

परमपूज्य श्रद्धेय वन्दनीय गुरुवर सन्त स्वामी श्रीशंकरदेवजी की कृपा से सन् १९९५ ई० में संस्थापित इस दिव्य योग मन्दिर ट्रस्ट को माध्यम बनाकर जो कुछ भी सेवाकार्य सम्पूर्ण भारतवर्ष में हो रहा है, वह सब इन्हीं पूर्वोक्त विद्वान् आचार्यों के तप, त्याग एवं साधना का ही प्रतिफल है। प्रस्तुत पुस्तक को भी मैंने मात्र निमित्त बनकर लिखा है, प्रेरणा, सहयोग एवं परामर्श इन सब आचार्यों का ही है। इन सब सुधी सहृदय सारस्वत मित्रों के प्रति धन्यवाद करना तो मैं आत्मश्लाघा ही कहूँगा।

हरिद्वार सहित सम्पूर्ण देश में योग एवं अध्यात्म के माध्यम से सेवारत पूजनीय सभी सन्तों का वन्दन करता हूँ, जिनका संस्था के सामाजिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक सेवा-प्रकल्पों में सदैव रचनात्मक आशीर्वाद बना रहता है। जिन-जिन महानुभावों का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहयोग इस पुस्तक के लेखनादि कार्यों में प्राप्त हुआ, मैं उन सभी विद्वानों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

आश्रम द्वारा संचालित सेवाकार्यों में जिनका सदैव पूर्ण सहयोग एवं सद्भाव रहता है, उन सभी श्रद्धालु भक्तजनों के लिए भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि भगवान् सबको श्रद्धा, भक्ति, शक्ति, आरोग्य, दीर्घायुष्य, भौतिक एवं आध्यात्मिक समृद्धि प्रदान करें, जिससे उनके द्वारा सम्पन्न होनेवाले समाजसेवा के कार्यों को अधिक बल और गति मिल सके। रंगीन चित्रों-सहित पुस्तक को भव्य रूप में प्रकाशित करने के लिए मैं साईं सिक्यूरिटी प्रिन्टर्स लिमिटेड को धन्यवाद देता हूँ।

समाज-सेवाकार्यों में अतिव्यस्तता के बीच लिखी गई इस पुस्तक में बहुत-सी त्रुटियों का रहना सहज है। इन त्रुटियों के सम्बन्ध में इस पुस्तक के विद्वान् पाठकों के जो भी सुझाव प्राप्त होंगे, उन्हें आगामी संस्करण में सम्मिलित किया जा सकेगा। ओ३म् शम्!

स्वामी रामदेव

विषय-क्रम

प्रकरण	पृष्ठ

प्रकरण	पृष्ठ

योग-परिचय

योग का स्वरूप :

योग शब्द वेदों, उपनिषदों, गीता एवं पुराणों आदि में अति पुरातन काल से व्यवहृत होता आया है। भारतीय दर्शन में योग एक अति महत्त्वपूर्ण शब्द है। आत्मदर्शन एवं समाधि से लेकर कर्मक्षेत्र तक योग का व्यापक व्यवहार हमारे शास्त्रों में हुआ है। योगदर्शन के उपदेष्टा महर्षि पतंजलि 'योग' शब्द का अर्थ चित्तवृत्ति का निरोध[१] करते हैं। प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा एवं स्मृति[२] ये पंचविध वृत्तियाँ जब अभ्यास एवं वैराग्यादि[३] साधनों से मन में लय को प्राप्त हो जाती हैं और मन द्रष्टा (आत्मा) के स्वरूप में अवस्थित हो जाता है, तब योग होता है।[४]

महर्षि व्यास योग का अर्थ समाधि[५] करते हैं। व्याकरणशास्त्र में (युज्) धातु से भाव में घञ् प्रत्यय करने पर योग शब्द व्युत्पन्न होता है। महर्षि पाणिनि के धातुपाठ के दिवादिगण में (युज् समाधौ), रुधादिगण में (युजिर् योगे) तथा चुरादिगण में (युज् संयमने) अर्थ में युज् धातु आती है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि संयमपूर्वक साधना करते हुए आत्मा का परमात्मा के साथ योग करके (जोड़कर) समाधि का आनन्द लेना योग है।

उपर्युक्त ऋषियों की मान्यताओं के अनुसार योग का तात्पर्य स्वचेतना और पराचेतना के मुख्य केन्द्र परमचैतन्य प्रभु के साथ संयुक्त हो जाना है। सम्यक् बोध से रागोपहति होने पर जब व्यक्ति वैराग्य के भाव से अभिभूत होता है, तब वह समस्त क्षणिक भावों, वृत्तियों से ऊपर उठकर आत्मसत्ता के सम्पर्क में आता है। चित्त की पाँच अवस्थाएं हैं[७] — क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र एवं निरुद्ध। इनमें से प्रथम तीन अवस्थाओं में योग एवं समाधि नहीं होती। एकाग्र और निरुद्ध अवस्था में अविद्यादि पंच क्लेशों एवं कर्म के बन्धन के शिथिल होने पर क्रमशः सम्प्रज्ञात समाधि (वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनन्दानुगत, अस्मितानुगत) और असम्प्रज्ञात समाधि (भवप्रत्ययगत एवं उपायप्रत्ययगत) की प्राप्ति होती है।

भारतीय वाङ्मय में गीता का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारत के आधुनिक सन्तों ने तो गीता के योग का प्रचार विश्वभर में किया है। गीता में योगेश्वर श्रीकृष्ण योग को विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त करते हैं– अनुकूलता-प्रतिकूलता, सिद्धि-असिद्धि, सफलता-विफलता, जय-पराजय, इन समस्त भावों में आत्मस्थ रहते हुए सम रहने को योग कहते हैं।[८] असंग भाव से द्रष्टा बनकर, अन्तर की दिव्य प्रेरणा से प्रेरित होकर कुशलतापूर्वक कर्म करना ही योग है।[९]

जैनाचार्यों के अनुसार जिन साधनों से आत्मा की सिद्धि और मोक्ष की प्राप्ति होती है, वह योग है।[१०] पुनः जैनदर्शन में मन, वाणी एवं शरीर की वृत्तियों को भी कर्मयोग कहा गया है।[११]

आधुनिक युग के योगी श्रीअरविन्द के अनुसार परमदेव के साथ एकत्व की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना तथा इसे प्राप्त करना ही सब योगों का स्वरूप है।[१२]

योग के प्रकार :

दत्तात्रेय योगशास्त्र तथा योगराज उपनिषद् में मन्त्रयोग, लययोग, हठयोग तथा राजयोग के रूप में योग के चार प्रकार माने गये हैं।[१३] योगतत्त्वोपनिषद् में इन चतुर्विध योगों का लक्षण इस प्रकार किया है।[१४]

१. **मन्त्रयोग** : मातृकादियुक्त मन्त्र को १२ वर्ष तक विधिपूर्वक जपने से अणिमा आदि सिद्धियाँ साधक को प्राप्त हो जाती हैं।

२. **लययोग** : दैनिक क्रियाओं को करते हुए सदैव ईश्वर का ध्यान करना लययोग है।

३. **हठयोग** : विभिन्न मुद्राओं, आसनों, प्राणायाम एवं बन्धों के अभ्यास से शरीर को निर्मल एवं मन को एकाग्र करना हठयोग कहलाता हैं।

४. **राजयोग** : यम-नियमादि के अभ्यास से चित्त को निर्मल कर ज्योतिर्मय आत्मा का साक्षात्कार करना 'राजयोग' कहलाता है। 'राजयोग' शब्द 'राजृ दीप्तौ' धातु से निष्पन्न हुआ है। 'राज' का अर्थ दीप्तिमान्, ज्योतिर्मय तथा 'योग' का अर्थ समाधि अथवा अनुभूति है।

गीता में ध्यानयोग, सांख्ययोग एवं कर्मयोग के बारे में विस्तृत विवेचन है।[१५] गीता के पंचम अध्याय में संन्यासयोग एवं कर्मयोग में कर्मयोग को श्रेष्ठ माना गया है।[१६]

महर्षि पतंजलि ने योगों में अष्टांग योग को मुख्यतया लक्षित कर योगसूत्रों में इसकी विवेचना की है। यौगिक भेदों के बारे में जब हम शास्त्रों पर दृष्टिपात करते हैं, तब यही निष्कर्ष निकलता है कि आध्यात्मिक साधना के क्षेत्र में जितने भी उपाय या विधियाँ प्रचलित थीं, उन सबको योग के नाम से अभिहित किया जाता था।

---

१. योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। (योगदर्शन : १.२)

२. प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः। (यो.द. : १.६)

३. अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः। (यो.द. : १.१२)

४. तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्। (यो.द. : १.३)

५. योगः समाधिः। (व्यासभाष्य; यो.द. : १.१)

६. ज्ञानस्यैव पराकाष्ठा वैराग्यम्। (व्यासभाष्यम्; यो.द. : १.१६)

७. क्षिप्तं मूढं विक्षिप्तमेकाग्रं निरुद्धमिति चित्तभूमयः। (व्यासभाष्यम्; यो. द. : १.१)

८. योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।। (गीता : २.४८)

९. योगः कर्मसु कौशलम्। (गीता : १.५०)

१०. (क) मोक्षेण योजनादेव योगो ह्यत्र निरुच्यते। (यशोविजय-कृत द्वात्रिंशिका : १०.१)
(ख) मुक्खेण जोयणाओ जोगो। (हरिभद्रसूरिकृता योगविंशिका : १)

११. कायवाङ्मनस्कर्म योगः। (तत्त्वार्थसूत्रम् : ६.१)

१२. श्रीअरविन्द : योग-समन्वय (पृ० ६०५)

१३. मन्त्रयोगो लयश्चैव हठयोगस्तथैव च।
राजयोगश्चतुर्थः स्याद् योगानामुत्तमस्तु सः।। (दत्तात्रेययोग : १८.१९)

१४. योगतत्त्वोपनिषद् (श्लोक-सं० २१ से २५)

१५. ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे।। (गीता ३.२४)

१६. संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयस्करावुभौ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते।। (गीता : ५.२)

योग का शरीर पर प्रभाव:

योग का अर्थ है अपनी चेतना (अस्तित्व) का बोध : अपने अन्दर निहित शक्तियों को विकसित करके परम चैतन्य आत्मा का साक्षात्कार एवं पूर्ण आनन्द की प्राप्ति। इस यौगिक प्रक्रिया में विविध प्रकार की क्रियाओं का विधान भारतीय ऋषि-मुनियों ने किया है। यहाँ हम मुख्य रूप से अष्टांग योग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि) के अन्तर्गत वर्णित आसन एवं प्राणायाम की व्याख्या करेंगे और उसी के सहयोगी हठयोग के षट्कर्म आदि का भी वर्णन यहाँ आपको उपलब्ध होगा। इन सब क्रियाओं से हमारी सुप्त चेतना-शक्ति का विकास होता है। सुप्त (डेड) तन्तुओं का पुनर्जागरण होता है एवं नये तन्तुओं, कोशिकाओं (सेल्स) का निर्माण होता है। योग की सूक्ष्म क्रियाओं द्वारा हमारे सूक्ष्म स्नायुतन्त्र को चुस्त किया जाता है, जिससे उनमें ठीक प्रकार से रक्त-संचार होता है और नई शक्ति का विकास होने लगता है। योग से रक्त-संचार पूर्णरूपेण सम्यक् रीति से होने लगता है। शरीरविज्ञान का यह सिद्धान्त है कि शरीर के संकोचन एवं प्रसारण होने से उनकी शक्ति का विकास होता है तथा रोगों की निवृत्ति होती है। योगासनों से यह प्रक्रिया सहज ही हो जाती है। आसन एवं प्राणायामों के द्वारा शरीर की ग्रन्थियों एवं मांसपेशियों में कर्षण-विकर्षण, आकुंचन-प्रसारण तथा शिथिलीकरण की क्रियाओं द्वारा उनका आरोग्य बढ़ता है। रक्त को वहन करनेवाली धमनियाँ एवं शिराएँ भी स्वस्थ हो जाती हैं। अतः आसन एवं अन्य यौगिक क्रियाओं से पेन्क्रियाज एक्टिव होकर इन्स्युलिन ठीक मात्रा में बनने लगता है, जिससे डायबिटीज आदि रोग दूर होते हैं। पाचनतन्त्र की स्वस्थता पर पूरे शरीर की स्वस्थता निर्भर करती है। सभी बीमारियों का मूल कारण पाचनतन्त्र की अस्वस्थता है। यहाँतक कि हृदयरोग (हार्ट-डिजीज) जैसी भयंकर बीमारी का कारण भी पाचनतन्त्र का अस्वस्थ होना पाया गया है। योग से पाचनतन्त्र पूर्ण रूप से स्वस्थ हो जाता है, जिससे सम्पूर्ण शरीर स्वस्थ, हल्का एवं स्फूर्तियुक्त बन जाता है। योग से हृदयरोग जैसी भयंकर बीमारी से भी छुटकारा पाया जा सकता है। फेफड़ों में पूर्ण स्वस्थ वायु का प्रवेश होता है, जिससे फेफड़े स्वस्थ होते हैं तथा दमा, श्वास, एलर्जी आदि रोगों से छुटकारा मिलता है। जब फेफड़ों में स्वस्थ वायु जाती है, तब उससे हृदय को भी बल मिलता है। यौगिक क्रियाओं से मेद का पाचन होकर शरीर का भार कम होता है तथा शरीर स्वस्थ, सुडौल एवं सुन्दर बनता है। इतना ही नहीं, इस स्थूल शरीर के साथ-साथ योग सूक्ष्म शरीर एवं मन के लिए भी अनिवार्य है। योग से इन्द्रियों एवं मन का निग्रह होता है, यम-नियमादि अष्टांग योग के अभ्यास से साधक असत् अविद्या के तमस् से हटकर अपने दिव्य स्वरूप ज्योतिर्मय, आनन्दमय, शान्तिमय, परम चैतन्य आत्मा एवं परमात्मा तक पहुँचने में समर्थ हो जाता है।

'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्' इस प्रकार हम योगपथ का अवलम्बन लेकर शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक उन्नति को प्राप्त करते हुए अपने लक्ष्य ईश्वर-साक्षात्कार– पूर्णानन्द की अनुभूति अधिगत कर लेते हैं।

स्वस्थ व्यक्ति की दिनचर्या:

सुस्वास्थ्य ही सम्पूर्ण सुखों का आधार है। स्वास्थ्य है तो जहान है, नहीं तो श्मशान है। स्वस्थ कौन है? आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ सुश्रुतसंहिता में महर्षि सुश्रुत लिखते हैं :

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

(सू० : १५.४१)

जिसके तीनों दोष वात, पित्त एवं कफ सम हों, जठराग्नि सम (न अति मन्द, न अति तीव्र) हो, शरीर को धारण करनेवाली सप्त धातुएँ रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा तथा वीर्य उचित अनुपात में हों, मल-मूत्र की क्रिया सम्यक् प्रकार से होती हो और दस इन्द्रियाँ (कान, नाक, आँख, त्वचा, रसना, गुदा, उपस्थ, हाथ, पैर एवं जिह्वा), मन एवं इनका स्वामी आत्मा भी प्रसन्न हो तो ऐसे व्यक्ति को स्वस्थ कहा जाता है। महर्षि सुश्रुत ने 'स्वस्थ' शब्द की बहुत ही व्यापक एवं वैज्ञानिक परिभाषा की है।

महर्षि चरक के अनुसार इस स्वस्थता की प्राप्ति हेतु आहार, निद्रा एवं ब्रह्मचर्य– ये तीन (स्तम्भ) खम्भे हैं।

त्रयोपस्तम्भा आहारनिद्राब्रह्मचर्यमिति। **(चरकसंहिता : सू० ११.३४)**

इन्हीं तीन आधारों पर यह शरीर टिका हुआ है। गीता में योगेश्वर श्रीकृष्ण भी कहते हैं :

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥

(गीता : ६.१७)

जिसके आहार, विहार, विचार एवं व्यवहार सन्तुलित तथा संयमित हैं, जिसके कार्यों में दिव्यता, मन में सदा पवित्रता एवं शुभ के प्रति अभीप्सा है, जिसका शयन एवं जागरण नियमित है, वही सच्चा योगी है। इन तीनों स्तम्भों एवं अन्य नियमों के विषय में यहाँ संक्षिप्त रूप से विचार प्रस्तुत है।

१. आहार:

यथा च खाद्यते ह्यन्नं तथा सम्पद्यते मनः।
यथा च पीयते वारि तथा निर्गद्यते वचः।।

आहार से व्यक्ति के शरीर का निर्माण होता है। आहार का शरीर पर ही नहीं, मन पर भी पूरा प्रभाव पड़ता है– 'जैसा अन्न, वैसा मन'।

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।।
स्मृतिलब्धे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः।।

(छान्दोग्योपनिषद्)

आहार के विषय में महर्षि चरक का एक दृष्टान्त बहुत ही सुन्दर है। एक बार महर्षि चरक ने अपने शिष्यों से पूछा, ''कोऽरुक्, कोऽरुक्, कोऽरुक्?'' कौन रोगी नहीं, अर्थात् स्वस्थ कौन है? महर्षि के प्रबुद्ध शिष्य वाग्भट ने उत्तर दिया, ''हितभुक्, मितभुक्, ऋतुभुक्।'' हितकारी, उचित मात्रा एवं ऋतु के अनुकूल भोजन करनेवाला स्वस्थ है। अपनी प्रकृति (वात, पित्त, कफ) को जानकर उसके अनुसार भोजन लें। यदि वात प्रकृति है, शरीर में वायु विकार होते हैं तो चावल आदि वायुकारक एवं खट्टा भोजन का त्याग कर देना चाहिए। छोटी पिप्पली, सोंठ, अदरक आदि का प्रयोग करते रहना चाहिए। पित्त प्रकृतिवाले को गर्म, तले हुए, पदार्थ नहीं लेने चाहिए। घीया, खीरा, ककड़ी आदि कच्चा भोजन लाभदायक होता है। कफ प्रकृतिवाले को ठण्डी चीजें चावल, दही, छाछ आदि का सेवन अति मात्रा में नहीं करना चाहिए। दूध में छोटी पिप्पली, हल्दी, आदि डालकर सेवन करना चाहिए। उचित मात्रा में भोजन लेना चाहिए। आमाशय का आधा भाग अन्न के लिए, चतुर्थांश पेय पदार्थों के लिए रखते हुए शेष भाग वायु के लिए छोड़ना उचित है। ऋतु के अनुसार पदार्थों का मेल करके सेवन करने से रोग पास में नहीं आते। भोजन का समय निश्चित होना चाहिए। असमय पर किया हुआ भोजन अपचन करके रोग उत्पन्न करता है। प्रातःकाल : आठ से नौ के बीच हल्का पेय, फलादि लेना अच्छा है। प्रातःकाल में अन्न का प्रयोग जितना कम हो, शरीर के लिए उतना उत्तम है। पचास वर्ष से अधिक आयु के व्यक्ति प्रातराश न लें तो अच्छा है। मध्याह्न में ग्यारह से बारह बजे तक भोजन लेना उत्तम है। बारह से एक बजे का समय मध्यम, उसके बाद उत्तरोत्तर निकृष्ट माना जाता है। सायंकाल सात से आठ का समय उत्तम, आठ से नौ का समय मध्यम और नौ बजे के बाद उत्तरोत्तर निकृष्ट समय होता है। भोजन करते समय वार्तालाप करने से भोजन अच्छी तरह से चबाया नहीं जाता तथा अधिक भी खा लिया जाता है। इसलिए भोजन के समय मौन रहकर भगवन्-नाम का स्मरण करते हुए चबा-चबाकर भोजन करना चाहिए। एक ग्रास को बत्तीस बार या कम से कम बीस बार तो चबाना ही चाहिए। चबाकर भोजन करने से हिंसा भाव की भी निवृत्ति होती है; क्योंकि हम सब जानते हैं कि जब क्रोध आता है, तब व्यक्ति दाँत पीसने लगता है, अर्थात् क्रोध का उद्गम-स्थान दाँत है। यदि हम हिंसाभाव को समाप्त करना चाहते हैं तो हमें चबाने पर विशेष ध्यान देना चाहिए। आप स्वयं इसका अनुभव करके देखेंगे तो इसके परिणाम से परिचित होंगे। भोजन के प्रारम्भ में ओम् का स्मरण या गायत्री आदि मन्त्रजप के साथ तीन आचमन करने चाहिए। भोजन के बीच में पानी नहीं पीना चाहिए। यदि भोजन रूक्ष हो तो थोड़ी मात्रा में पी सकते हैं। भोजन के बाद दो-तीन घूँट से ज्यादा पानी नहीं पीयें। यदि छाछ हो तो जरूर पीना चाहिए। संस्कृत में एक श्लोक आता है, जिसका तात्पर्य है– ''जो प्रातःकाल उठकर जलपान करता है, रात्रि को भोजनोपरान्त दुग्धपान तथा मध्याह्न में भोजन के बाद छाछ पीता है उसे वैद्य की आवश्यकता नहीं होती।'' अर्थात् वह व्यक्ति नीरोग रहता है। इसके साथ-साथ हमारा भोजन पूर्णरूप से हमारे लिए उपयुक्त हो। भोजन में खनिज, लवण एवं विटामिन बी भरपूर होने चाहिए। भोजन में मांस, अण्डे आदि का प्रयोग न हो। भगवान् ने हमें शाकाहारी बनाया है। जब हम रोटी खाकर जी सकते हैं, जिसमें कोई हिंसा नहीं, तो किसी प्राणी की हत्या करके उसके प्रिय जीवन को समाप्त करके जीने की क्या आवश्यकता है? इस जीने से तो मर जाना बेहतर है। मांस खाने से दया, करुणा, सहानुभूति, प्रेम, अपनत्व एवं श्रद्धाभक्ति आदि मानवीय गुणों का अन्त हो जाता है। मानव दानव होकर विचरता है। मांसाहारी का पेट एक मुर्दाघाट (श्मशान घाट) की तरह होता है।

२. निद्रा : निद्रा अपने-आपमें एक पूर्ण सुखद अनुभूति है। यदि व्यक्ति को नींद न आये तो पागल भी हो सकता है। निद्रा देखने में तो कुछ नहीं लगती, परन्तु जिनको नींद नहीं आती, वे ही जानते हैं, इसका क्या महत्त्व है। एक स्वस्थ व्यक्ति के लिए ६ घण्टे की नींद पर्याप्त है। बालक एवं वृद्ध के लिए आठ घण्टे सोना उचित है। सायंकाल शीघ्र सोना एवं प्रातःकाल शीघ्र उठना व्यक्ति के जीवन को उन्नत बनाता है।

भगवान् ने प्रकृति को कुछ ऐसे ही नियमों में बाँधा है कि सभी मनुष्येतर प्राणी पशु, पक्षी सायंकाल होने पर अपने-अपने ठिकानों पर विश्राम करने लगते हैं। उल्लू, चमगादड़ आदि को छोड़कर सभी पक्षी जैसे ही ब्राह्ममुहूर्त का आगमन होता है, प्रभु का स्मरण करके अपने कार्यों में लग जाते हैं। मुर्गा दूसरों को ब्राह्म मुहूर्त में न सोने का सन्देश देता है। चिड़िया सुन्दर गीतों से भगवान् के नाम का स्तवन करती हुई नजर आती है; परन्तु यह अभागा मनुष्य उल्लू की तरह रात भर जागता है और इस ब्राह्मवेला का आनन्द लिए बिना ही पड़ा रहता है और अन्त में रोगी हो जाता है। हम भी इन मूक प्राणियों से प्रेरणा प्राप्त करें। जल्दी सोना एवं जल्दी उठना व्यक्ति को स्वस्थ एवं महान् बनाता है।

३. ब्रह्मचर्य : अपनी इन्द्रियों एवं मन को विषयों से हटाकर ईश्वर एवं परोपकार में लगाने का नाम ब्रह्मचर्य है। केवल उपस्थ इन्द्रिय का संयम-मात्र ही ब्रह्मचर्य नहीं है। इन्द्रियों एवं मन की शक्तियों का रूपान्तरण कर उनको आत्ममुखी कर ब्रह्म की प्राप्ति करना ब्रह्मचर्य है।

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्तास्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः।
कालो न यातो वयमेव याताः तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः।।

(भर्तृहरि : वैराग्यशतक, १२)

भोग को हम नहीं भोगते, भोग ही हमें भोग लेते हैं। तप नहीं तपा जाता, हम स्वयं तप जाते हैं। काल का अन्त नहीं होता, हम ही काल में समा जाते हैं। तृष्णाएँ जीर्ण नहीं होती, हम स्वयं जीर्ण हो जाते हैं। भोग भोगने से तृप्ति कदापि नहीं होती, अपितु इच्छाएँ बलवती होती चली जाती हैं। महर्षि मनु कहते हैं :

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते।।

(मनुस्मृति : अध्याय २, श्लोक ९४)

काम, काम के उपभोग से शान्त नहीं होता,अपितु अग्नि में जैसे घृत डालने से अग्नि तीव्र होती है, वैसे ही भोगों को भोगती हुई वासनाएँ और अधिक बढ़ जाती हैं। महर्षि कपिल भी सांख्यदर्शन में कहते हैं :

न भोगात् रागशान्तिर्मुनिवत्।

(सांख्यदर्शन : ४.२७)

सारी सृष्टि मर्यादाओं के पालन का सतत उपदेश दे रही है। हम भी इस मर्यादित सृष्टि के सहयोगी बनें।

४. व्यायाम: इस शरीर को चलाने के लिए जैसे आहार की आवश्यकता है, वैसे ही आसन-प्राणायाम आदि व्यायाम की भी परमावश्यकता है। बिना व्यायाम के शरीर अस्वस्थ तथा ओज-कान्तिहीन हो जाता है। जबकि नियमित रूप से व्यायाम करने से दुर्बल, रोगी एवं कुरूप व्यक्ति भी बलवान्, स्वस्थ एवं सुन्दर बन जाता है। हृदयरोग, मधुमेह, मोटापा, वातरोग, बवासीर, गैस, रक्तचाप, मानसिक तनाव आदि का भी मुख्य कारण शारीरिक श्रम का अभाव है। यदि नित्य प्रति योगाभ्यास किया जाये तो ये रोग कभी नहीं हो सकते। व्यायाम के भी कई प्रकार हैं। इन सबमें आसन-प्राणायाम सर्वोत्तम हैं। दूसरे व्यायामों से शारीरिक परिश्रम तो होता है, परन्तु मन में एकाग्रता एवं शान्ति नहीं आती। भारी व्यायाम करने से मांसपेशियों (Muscles) का ही व्यायाम होता है, स्नायु का व्यायाम नहीं होता। इसीलिए भारी व्यायाम से मांसपेशियाँ इतनी सख्त हो जाती हैं कि उनमें धीरे-धीरे रक्त-संचार होना भी बन्द हो जाता है तथा दर्द होना प्रारम्भ हो जाता है। जबकि आसन-प्राणायाम से पूर्ण आरोग्य लाभ होता है तथा किसी भी प्रकार की कोई हानि नहीं होती तथा शरीर के साथ मन में एकाग्रता एवं शांति का विकास होता है।

५. स्नान: आसन आदि के पश्चात् शरीर का तापमान सामान्य होने पर स्नान करना चाहिए। स्नान से शरीर में ताजगी आती है, अनावश्यक गर्मी शान्त होकर शरीर शुद्ध एवं हल्का बन जाता है।

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति।।

(मनुस्मृति : ५.१०९)

जल से शरीर शुद्ध होता है। सत्य से मन की शुद्धि होती है। विद्या एवं तप के अनुष्ठान से आत्मा तथा ज्ञान से बुद्धि निर्मल बनती है। रोगी को छोड़कर सामान्य व्यक्ति को स्नान ठण्डे पानी से करना चाहिए। गर्म पानी से स्नान करने पर मन्दाग्नि एवं दृष्टि-दुर्बलता आदि रोग हो जाते हैं। असमय में ही बाल सफेद होने एवं गिरने लगते हैं। शरीर में अनावश्यक गर्मी बढ़कर धातुक्षीणता होती है। स्नान के पश्चात् शरीर को खादी के तौलिए से खूब रगड़ना चाहिए। इससे कान्ति बढ़ती है। यदि कब्ज है तो पेट को भी सूखे तौलिए से रगड़ना चाहिए। नदी, तालाब आदि में तैरकर स्नान करें तो सर्वोत्तम है।

६. ध्यान: शौच, स्नान, आसनादि नित्यकर्मों से निवृत्त होकर सुख, शान्ति एवं आनन्द की कामना रखनेवाले व्यक्ति प्रतिदिन कम से कम १५ मिनट से लेकर एक घण्टे तक भगवान् का ध्यान, उपासना अवश्य करें। प्रणव एवं गायत्री आदि मन्त्रों का दीर्घकाल तक श्रद्धापूर्वक किया हुआ जप परमशक्ति, शान्ति एवं आनन्ददायक होता है।

अष्टांग योग

अष्टांग योग की उपयोगिता:

संसार के सभी व्यक्ति सुख एवं शान्ति चाहते हैं तथा विश्व में जो कुछ भी व्यक्ति कर रहा है, उसका एक ही मुख्य लक्ष्य है कि इससे उसे सुख मिलेगा। व्यक्ति ही नहीं, कोई भी राष्ट्र अथवा विश्व के सम्पूर्ण राष्ट्र मिलकर भी इस बात पर सहमत हैं कि विश्व में शान्ति स्थापित होनी चाहिए। प्रतिवर्ष इसी उद्देश्य से ही एक व्यक्ति को, जो कि सर्वात्मना शान्ति स्थापित करने के लिए समर्पित होता है, उसको नोबेल पुरस्कार प्रदान किया जाता है। परन्तु यह शान्ति कैसे स्थापित हो, इस बात को लेकर सभी असमंजस की स्थिति में हैं। सभी लोग अपने-अपने विवेक के अनुसार इसके लिए कुछ चिन्तन करते हैं, परन्तु एक सर्वसम्मत मार्ग नहीं निकल पाता। कोई कहता है : जिस दिन इस धरती पर केवल इस्लाम धर्म या ईसाई धर्म होगा, उस दिन सभी सुखी हो जायेंगे। कोई कहता है: यदि सब बुद्ध या महावीर की शरण में आ जायें तो सर्वत्र सुख और शान्ति हो जायेगी। भारत में तो ऐसे सम्प्रदायों, मत-पन्थों एवं गुरुओं की भरमार है और सभी यही दावा करते हैं कि उनके द्वारा निर्दिष्ट पथ पर चलकर ही विश्व में सुख और शान्ति सम्भव है। परन्तु इन सब मत-पन्थों एवं सम्प्रदायों एवं तथाकथित इस्लाम एवं ईसाइयत, बौद्ध एवं जैनादि धर्मों में वह उदात्तता, व्यापकता एवं समग्रता नहीं है, जिससे कि मानवमात्र उनको अपना सकें। इन सबकी अपनी-अपनी सीमाएँ हैं। दुनिया में इन्हीं मत-पन्थों एवं तथाकथित धर्मों की एकच्छत्र स्थापना हेतु ही खूनी संघर्ष भी हुए, परन्तु परिणाम कुछ भी नहीं निकला। अशान्ति दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। इसका अर्थ है कि दुनिया के लोग जिन उपायों पर विचार कर रहे हैं, उनमें सार्थकता तो है, परन्तु परिपूर्णता, समग्रता एवं व्यापकता नहीं। इन प्रचलित मत-पन्थों, सम्प्रदायों एवं तथाकथित धर्मों को अपनाने से जहाँ व्यक्ति को एक ओर थोड़ी शान्ति मिलती है, वहीं इन सम्प्रदायों के पचड़े में पड़कर व्यक्ति कुछ ऐसे झूठे अन्धविश्वासों, कुरीतियों एवं मिथ्या आग्रहों में फँस जाता है, जिनसे निकलना मुश्किल हो जाता है। साथ ही वह पूर्ण सत्य से भी वंचित रह जाता है। इतना ही नहीं, इन इस्लाम एवं ईसाइयत आदि तथाकथित धर्मों को यदि व्यक्ति अपना भी ले तो कई बार तो राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता पर भी प्रश्नचिह्न लग जाता है। राष्ट्र की सत्ता ही कई बार समाप्त होने लगती है। ऐसी परिस्थिति में उस धर्म से भी भय बना रहता है। परन्तु क्या ऐसा कुछ नहीं हो सकता, जिसपर दुनिया का हर इन्सान चल सके? क्या ऐसे कुछ नियम-मान्यताएँ एवं मर्यादाएँ हो सकती हैं, जिनपर पूरी दुनिया के सभी व्यक्ति चल सकें? जिससे किसी भी व्यक्ति एवं राष्ट्र की एकता एवं अखण्डता खण्डित नहीं होती हो और न ही किसी का व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्ध होता हो, जिसको प्रत्येक व्यक्ति अपना सकता हो और जीवन में पूर्ण सुख, शान्ति एवं आनन्द प्राप्त कर सकता हो? हाँ है! एक ऐसा पथ, जिसपर निर्भय होकर पूर्ण स्वतन्त्रता के साथ दुनिया का प्रत्येक इन्सान चल सकता है और जीवन में पूर्णसुख, शान्ति एवं आनन्द को प्राप्त कर सकता है। यह है— महर्षि पतंजलि-प्रतिपादित अष्टांग योग का पथ। यह कोई मत-पन्थ या सम्प्रदाय नहीं, अपितु जीवन जीने की सम्पूर्ण पद्धति है। यदि संसार के लोग वास्तव में इस बात को लेकर गम्भीर हैं कि विश्व में शान्ति

स्थापित होनी ही चाहिए तो इसका एकमात्र समाधान है अष्टांग योग का पालन। अष्टांग योग के द्वारा ही वैयक्तिक एवं सामाजिक समरसता, शारीरिक स्वास्थ्य, बौद्धिक जागरण, मानसिक शान्ति एवं आत्मिक आनन्द की अनुभूति हो सकती है। अब हम संक्षेप से इस अष्टांग योग के सम्बन्ध में विचार करते हैं। महर्षि पतंजलि योगसूत्रों के माध्यम से लिखते हैं :

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि॥

(योग.द. : २.२९)

१. यम, २. नियम, ३.आसन, ४.प्राणायाम, ५. प्रत्याहार, ६. धारणा, ७. ध्यान तथा ८. समाधि – ये योग के आठ अंग हैं। इन सब योगांगों का पालन किये बिना कोई भी व्यक्ति योगी नहीं हो सकता। यह अष्टांग योग केवल योगियों के लिए ही नहीं, अपितु जो भी व्यक्ति जीवन में स्वयं पूर्ण सुखी होना चाहता है तथा प्राणिमात्र को सुखी देखना चाहता है, उन सबके लिए अष्टांग योग का पालन अनिवार्य है। अष्टांग योग धर्म, अध्यात्म, मानवता एवं विज्ञान की प्रत्येक कसौटी पर खरा उतरता है। इस दुनिया के खूनी संघर्ष को यदि किसी उपाय से रोका जा सकता है तो वह अष्टांग योग ही है। अष्टांग योग में जीवन के सामान्य व्यवहार से लेकर ध्यान एवं समाधि-सहित अध्यात्म की उच्चतम अवस्थाओं तक का अनुपम समावेश है। जो भी व्यक्ति अपने अस्तित्व की खोज में लगा है तथा जीवन के पूर्ण सत्य से परिचित होना चाहता है, उसे अष्टांग योग का अवश्य ही पालन करना चाहिए। यम और नियम अष्टांग योग के मूल आधार हैं।

१. यम :

अष्टांग योग का प्रथम अंग है यम। यम शब्द 'यमु उपरमे' धातु से निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है– **'यम्यन्ते उपरम्यन्ते निवर्त्यन्ते हिंसादिभ्य इन्द्रियाणि यैस्ते यमाः** 'अर्थात् जिनके अनुष्ठान से इन्द्रियों एवं मन को हिंसादि अशुभ भावों से हटाकर आत्मकेन्द्रित किया जाये, वे यम हैं। महर्षि पतंजलि ने इन यमों की परिगणना इस प्रकार की है :

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः॥

(योग.द. : २.३०)

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह-ये पाँच यम हैं। अब हम यहाँ क्रमशः इनका संक्षेप में वर्णन करते हैं।

(क) अहिंसा : अहिंसा का अर्थ है किसी भी प्राणी को मन, वचन तथा कर्म से कष्ट न देना। मन में भी किसी का अहित न सोचना, किसी को कटुवाणी आदि के द्वारा भी कष्ट न देना तथा कर्म से भी किसी भी अवस्था में, किसी भी स्थान पर किसी भी दिन किसी भी प्राणी की हिंसा न करना, यह अहिंसा है। महर्षि व्यासदेव भी कहते हैं :

तत्राहिंसा सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनभिद्रोहः।

(व्यासभाष्य, यो० द०)

(ख) सत्य : जैसा देखा, सुना तथा जाना हो, वैसा ही शुद्ध भाव मन में हो, वही वाणी में तथा उसी के अनुरूप कार्य हो तो वह सत्य कहलाता है। दूसरों के प्रति ऐसी वाणी कभी नहीं बोलनी चाहिए, जिसमें छल-कपट हो, भ्रान्ति पैदा होती हो अथवा जिसका कोई प्रयोजन न हो। ऐसी वाणी बोलनी चाहिए, जिससे किसी प्राणी को दु:ख न पहुँचे। वाणी सर्वभूतहिताय होनी चाहिए। दूसरों की हानि करनेवाली वाणी पापमयी होने से दु:खजनक होती है। अत: परीक्षा करके सब प्राणियों का हित करनेवाली वाणी का ही प्रयोग करना चाहिए। यही बात महर्षि व्यास सत्य के सम्बन्ध में कहते हैं **''सत्यं यथार्थे वाङ्मनसी। यथादृष्टं यथानुमितं यथाश्रुतं तथा वाङ्मनश्चेति। परत्र स्वबोधसङ्क्रान्तये वागुक्ता सा यदि न वाधिता भ्रान्ता वा प्रतिपत्तिवन्ध्या वा भवेदिति। एषा सर्वभूतोपकारार्थं प्रवृत्ता न भूतोपघाताय।''**

(व्यासभाष्य, यो० द०)

(ग) अस्तेय : अस्तेय का अर्थ है चोरी न करना। दूसरों की वस्तु पर बिना पूछे अधिकार करना अथवा शास्त्रविरुद्ध ढंग से वस्तुओं का ग्रहण करना स्तेय (चोरी) कहलाता है। दूसरों की वस्तु को प्राप्त करने की मन में लालसा भी चोरी है। अत: योगी पुरुष को न तो चोरी करनी चहिए, न ही किसी से करवानी चाहिए, अपितु भगवान् ने जो कुछ प्रदान किया है, उसमें पूर्ण सन्तुष्ट एवं आनन्दित रहना चाहिए।

(घ) ब्रह्मचर्य : कामवासना को उत्तेजित करनेवाले खान-पान, दृश्य-श्रव्य एवं शृंगारादि का परित्याग कर सतत वीर्य-रक्षा करते हुए ऊर्ध्वरेता होना ब्रह्मचर्य कहलाता है। अष्टविध मैथुन-वासना की दृष्टि से किसी का दर्शन, स्पर्शन, एकान्त-सेवन, भाषण, विषय-कथा, परस्पर क्रीड़ा, विषय का ध्यान तथा संग (Sex) ये आठ प्रकार के मैथुन हैं। ब्रह्मचारी को इनसे बचते हुए सदा जितेन्द्रिय होकर अपनी समस्त इन्द्रियों आँख, कान, नाक, त्वचा एवं रसना को सदा शुभ की ओर प्रेरित करना चाहिए तथा मन में सदा भद्र, सुविचार, शिव-संकल्प रखना चाहिए। साधक को सदा ही अपने मन में इस विचार को दृढ़ रखना चाहिए कि मेरी स्वाभाविक अवस्था विकार-रहित है। जैसे जल का स्वाभाविक गुण शीतलता एवं द्रवत्व (बहना) है। जमना, गर्म होना, बाष्प बनना तथा बाष्प बनकर उड़ना ये गुण उसके स्वाभाविक नहीं होते तथा गर्म करने, बाष्प बनने तथा बर्फ बनने पर ठोस हो जाने के बाद भी वह अपनी स्वाभाविक अवस्था में ही वापस लौट आता है, इसी तरह ब्रह्मचर्य हमारी स्वाभाविक अवस्था है। कभी शान्त एकान्त स्थान पर बैठकर चिन्तन करना और अपने भीतर यह देखना, कहीं वासना है क्या? क्या आप में काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं अहंकार आदि विकार हैं? तो आप पायेंगे कि आपमें ये विकार हैं ही नहीं। इन विकारों को तो आमन्त्रित कर पैदा किया जाता है। ये विकार चोरों की तरह हमारे शरीर में आते हैं एवं थोड़ी ही देर ठहरते हैं तथा उतनी ही देर में हमारे शरीर, मन एवं आत्मा की शक्ति को लूटकर, विकृत करके, सब कुछ बिगाड़ करके भाग जाते हैं। काम तथा क्रोध थोड़ी देर के लिए आते हैं तथा थोड़ी ही देर में ये विकार हमारे शरीर को हिलाकर रख देते हैं, शरीर को

शक्तिहीन एवं ओजोहीन तथा निस्तेज कर देते हैं, शरीर में जहर घोल देते हैं। हम बार-बार लुटते हैं और कहते रहते हैं कि इनसे लुटना तो स्वाभाविक है। हम बच नहीं सकते। तो फिर भाई आपको कोई बचा नहीं सकता। उठो, जागो। और अपने स्वाभाविक धर्म (स्वधर्म) को पहचानो। विकार आपके स्वधर्म नहीं, ये परधर्म हैं और गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं **'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।'** काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं अहंकार आदि विकारों की भट्ठी में अब अपने-आपको और अधिक नहीं जलाओ। आप आत्मा हैं, आपके स्वाभाविक गुण हैं मैत्री, करुणा, प्रेम, सहानुभूति, सेवा, समर्पण, परोपकार, आनन्द एवं शान्ति। आप निर्विकार हैं, विकारों को तो हम बुलाते हैं, आमन्त्रित करते हैं, ऐसे ही जैसे कि कोई धन-सम्पत्ति एवं वैभव को संचित करे और फिर चोरों को आमन्त्रित कर दे और फिर जब चोर हमारे ही मकान, भूमि एवं भवन में कब्जा करके बैठ जाएँ, सब सम्पत्ति लूट लें और हम ठगे-से खड़े रहकर देखते रहें और कहें कि हाय! यह सब क्या हुआ! मैंने तो इन्हें क्या बुलाया कि ये तो मेरा ही सब कुछ लूट रहे हैं, सब बरबाद कर रहे हैं! लेकिन मनुष्य बाहर की सम्पत्ति को लुटाने के लिए तो चोरों को निमन्त्रण नहीं देता; क्योंकि यह सम्पत्ति एवं वैभव वह खुद इकट्ठा करता है, उसको वह लुटता हुआ नहीं देख सकता। परन्तु मनुष्य! जरा विचार कर, तेरे भीतर असीम आनन्द, शान्ति, अपार सुख, शक्ति, ओज, तेज, बल, बुद्धि, पराक्रम, मैत्री, करुणा, मुदिता आदि अनन्त ऐश्वर्य हैं, जो तेरे प्रभु ने तुझे दिया है, उसे काम, क्रोध आदि विकार एवं वासना रूपी चोरों को बार-बार बुलाकर बार-बार क्यों लुटाता है और कहता है कि यह तो स्वाभाविक ही है, मैं इसमें क्या करूँ? अब तो सँभलो और अपने-आपको पहचानो, भगवान् की दी हुई शक्ति को पहचानो। इस सुविचार शिव-संकल्प को अपने भीतर दृढ़ कर लो कि मैं निर्विकार हूँ, ब्रह्मचर्य मेरा स्वधर्म है, ब्रह्मचारी रहना स्वाभाविक है और निश्चित जानो कि विकारों के अस्वाभाविक एवं अल्पकालीन उफान एवं प्रवाह के बाद आपको निर्विकार स्थिति में ही जीवन जीना होता है। अतः अब अपने-आपको विकारों की अग्नि में और अधिक न जलाओ। भगवान् की दी हुई दिव्य शक्तियों से सम्पन्न होकर ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए असीम शान्ति एवं अपरिमित आनन्द और अपार-अथाह सुख को अपने भीतर से प्राप्त करो। ब्रह्मचर्य का पालन करके ओजस्वी, तेजस्वी, बुद्धिमान्, बलवान् एवं पराक्रमी बनकर सबसे दिव्य प्रेम करते हुए सेवा, परोपकार एवं करुणा आदि से अपने जीवन को सुन्दर बनाओ। योग-साधना के पथ पर चलो, तभी अपने-आपको तथा अपने ही भीतर विराजमान सच्चिदानन्द-स्वरूप प्रभु को जान तथा पहचान पाओगे। यही जीवन का सत्य है। यही जीवन का लक्ष्य और उद्देश्य है।

(ङ) अपरिग्रह : परिग्रह का अर्थ है चारों ओर से संग्रह (इकट्ठा) करने का प्रयत्न करना। इसके विपरीत जीवन जीने के लिए न्यूनतम धन, वस्त्र आदि पदार्थों एवं मकान से सन्तुष्ट होकर जीवन के मुख्य लक्ष्य ईश्वर-आराधना करना अपरिग्रह है। ईश्वरीय व्यवस्था के अनुसार जीवन में जो कुछ भी धन, वैभव, भूमि, भवन आदि ऐश्वर्य हमें प्राप्त हों, उनको कभी अहंकार के वशीभूत होकर अपना नहीं मानना चाहिए तथा

भौतिक सुख तथा बाह्य सुख के साधनों की इच्छा भी साधक को नहीं करनी चाहिए अनासक्त भाव से जीवन जीते हुए अपने-आप जो भी सुख-साधन उपलब्ध हों, उनका उपयोग दूसरों को सुख पहुँचाने के लिए करना चाहिए। महर्षि व्यास कहते हैं:

विषयाणामर्जनरक्षणक्षयसंगहिंसादोषदर्शनादस्वीकरणमपरिग्रहः।

(व्यासभाष्य, यो० द०)

विषय-रूप धनादि भोग्य पदार्थों के अर्जन (संग्रह) करने में दोष, रक्षण – अर्थात् संग्रह किये हुए पदार्थों की रक्षा में दोष, क्षय-संगृहीत किये हुए पदार्थों के नाश होने में दोष, संग-उन संगृहीत ऐश्वर्यों में आसक्त होने में दोष और हिंसा- अर्थात् **'नानुपहत्य भूतान्युपभोगः सम्भवति'** प्राणियों को बिना पीड़ा दिये सुख का उपभोग सम्भव नहीं है। इसलिए लौकिक सुख-भोग में हिंसाकृत दोष भी है। अतः योगी पुरुष को विषयों के प्रति अनासक्त रहकर अपरिग्रह का पालन करना चाहिए। इन सभी यमों - अहिंसा एवं सत्यादि का पालन मन, वचन तथा कर्म से करना चाहिए तथा इसमें किसी तरह की कोई सीमा नहीं है। महर्षि पतंजलि कहते हैं :

जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम्।

(योग.द. : २.३१)

अर्थात् जाति, देश, काल तथा समय से अनवच्छिन्न-अप्रतिबद्ध, अर्थात् इनकी सीमाओं के बन्धन से ऊपर उठकर इन अहिंसादि का चित्त की सभी अवस्थाओं में पालन किया जाता है तो ये अहिंसादि महाव्रत कहलाते हैं। इन व्रतों के पालन करने में सामान्य व्यक्ति की दृष्टि से देखा जाये तो बड़ी कठिनाई आती है। इसलिए व्यक्ति कुछ सीमाएँ निर्धारित कर लेता है और इन अहिंसा, सत्य एवं अस्तेय आदि को जाति अर्थात् वर्ग-विशेष, देश-विशेष, काल-विशेष तथा समय-विशेष की सीमाओं में बाँध लेता है। उदाहरण के लिए, हम अहिंसा को ही लेते हैं; जैसे- एक व्यक्ति मछुआरा है, वह मछली मारकर बेचता एवं खाता है। यह उसकी हिंसा हुई, परन्तु वह गाय, भेड़, बकरी आदि को नहीं मारता, यह उसकी अहिंसा हो गई। परन्तु यह अहिंसा पूर्ण अहिंसा नहीं होगी; क्योंकि यह अहिंसा जाति में बँधी हुई है। इसी तरह अहिंसा देश की सीमा में बँधी हुई है, जैसे कि मैं काशी, मथुरा या हरिद्वार आदि तीर्थों में हिंसा नहीं करूँगा, अर्थात् इन तीर्थों से अन्यत्र मैं हिंसा कर सकता हूँ। ऐसा सोचनेवाला देश (स्थान-विशेष) तक ही अहिंसक है, पूरा अहिंसक नहीं है। काल के सम्बन्ध में भी यही बात है; जैसे कि मैं एकादशी, पूर्णमासी, अमावस्या या मंगलवार आदि या किसी पर्व-विशेष के दिन हिंसा नहीं करूँगा। यह काल की सीमा में बँधी हुई अहिंसा हो गई। इसी प्रकार से समय की सीमाओं के सम्बन्ध में है, जैसे कि मैं सामान्य अवस्था में तो नहीं, परन्तु विशेष अवस्था में जब मुझपर कोई संकट-विशेष होगा, तब मैं हिंसा करूँगा। यह भी पूर्ण अहिंसा नहीं है। पूर्ण अहिंसा तब होगी जब सब सीमाओं से ऊपर उठकर सर्वथा, सर्वदा, सर्वत्र, सब प्राणियों के प्रति, सब अवस्थाओं में, सब परिस्थितियों में, सब स्थानों पर बिना हेर-फेर के सहज रूप से इनका पालन किया जायेगा।

इसी प्रकार से सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह के सम्बन्ध में जानना चाहिए। जैसे सामान्य रूप से मैं किसी ब्राह्मण, गौ आदि की रक्षा के लिए तो झूठ बोलूँगा। यह जातिपरक झूठ हो गया। देश-स्थान-विशेष, अर्थात् हरिद्वार आदि तीर्थों या गुरुकुल, मठ अथवा मन्दिर, गुरुद्वारा, मस्जिद, चर्च आदि में सत्य बोलूँगा। अन्यत्र व्यापार वा न्यायालय आदि राजकार्यों में असत्य भी बोलूँगा। इसी तरह से काल-विशेष, अर्थात् एकादशी आदि तथा समय-विशेष प्रसंग या विशेष प्रयोजन के लिए झूठ बोलूँगा, सामान्य अवस्था में नहीं, यह सब पूर्ण सत्य नहीं होगा। इसी प्रकार अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह के सम्बन्ध में भी जानना चाहिए। सब सीमाओं के बन्धन से ऊपर उठकर मन, वचन तथा कर्म से इन यमों का प्रत्येक साधक को पालन करना चाहिए।

२. नियम:

योगांगों में दूसरा आधारभूत अंग है नियम। महर्षि पतंजलि लिखते हैं :

शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।

(योग.द. : २.३२)

शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर-प्रणिधान – ये पाँच नियम हैं।

(क) शौच: शौच कहते हैं शुद्धि को, पवित्रता को। यह शौच, शुचिता या पवित्रता भी दो प्रकार की होती है: एक बाह्य, दूसरी आभ्यन्तर। महर्षि मनु ने शौच के सम्बन्ध में बहुत ही सुन्दर कहा है:

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति॥

(मनुस्मृति : ५.१०९)

साधक को प्रतिदिन जल से शरीर की शुद्धि, सत्याचरण से मन की शुद्धि, विद्या और तप के द्वारा आत्मा की शुद्धि तथा ज्ञान के द्वारा बुद्धि की शुद्धि करनी चाहिए। भगवती गंगा आदि के पवित्र जल से भी शरीर की शुद्धि हो सकती है। मन, बुद्धि एवं आत्मा की शुद्धि के लिए तो ऋषियों द्वारा बताये गये उपायों को करना ही होगा।

(ख) सन्तोष: अपने पास विद्यमान समस्त साधनों से पूर्ण पुरुषार्थ करें। जो कुछ प्रतिफल मिलता है, उससे पूर्ण सन्तुष्ट रहना और अप्राप्त की इच्छा न करना, अर्थात् पूर्ण पुरुषार्थ एवं ईश्वर-कृपा से जो प्राप्त हो, उसका तिरस्कार न करना तथा अप्राप्त की तृष्णा न रखना ही सन्तोष है। महर्षि व्यास कहते हैं:

सन्तोषामृततृप्तानां यत्सुखं शान्तचेतसाम्॥
कुतस्तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम्॥

सन्तोष-रूपी अमृत के पान करने से तृप्त हुए शान्तचित्त मनुष्यों को जो आत्मिक और हार्दिक सुख मिलता है, वह

धन-वैभव की व्याकुलता में इधर-उधर भटकनेवाले मनुष्यों को कभी नहीं मिल सकता। अन्यत्र भी कहा है– **'सन्तोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः।'** सुख का मूल'आधार सन्तोष है और इसके विपरीत तृष्णा-लालसा दुःखों का मूल है। उपनिषद् में ऋषि कहते हैं– **'न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः।'** धन के द्वारा मनुष्य की कभी तृप्ति नहीं हो सकती। अतः साधक को पूर्ण पुरुषार्थ करते हुए उसका जो भी प्रतिफल ईश्वर अपनी न्यायव्यवस्थानुसार प्रदान करते हैं, उसमें पूर्ण सन्तुष्ट रहना चाहिए और यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि ईश्वर सदा ही हमारी आवश्यकता और पात्रता से अधिक ही हमें रूप, यौवन, धन, समृद्धि एवं समस्त वैभव प्रदान करते हैं।

(ग) तपः महर्षि व्यास तप का अर्थ द्वन्द्वों का सहन करते हैं **'तपो द्वन्द्वसहनम्'**। अपने सद्-उद्देश्य की सिद्धि में जो भी कष्ट, बाधाएँ, प्रतिकूलताएँ आयें, उनको सहजता से स्वीकार करते हुए, निरन्तर, बिना विचलित हुए, अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ़ना तप कहलाता है। महाभारत में भी जब यक्ष प्रश्न करता है युधिष्ठिर से कि **'तपसः किं लक्षणम्'** तो महाराज युधिष्ठिर उत्तर देते हैं– **'तपः स्वधर्मवर्तित्वम्।'** - हे यक्ष! अपने कर्त्तव्य के पालन में जो भी विघ्न-बाधाएँ आयें, उन्हें सहते हुए निरन्तर अपने स्वधर्म का पालन करना ही तप है। ये द्वन्द्व हैं-भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख, हानि-लाभ, मान-अपमान, स्तुति-निन्दा, सत्कार-तिरस्कार, जय-पराजय आदि। इन सब प्रतिकूलताओं में सम रहना तप है, न कि अग्नि के बीच तपना या एक पैर पर खड़े होकर अपने शरीर को कष्ट देना आदि।

(घ) स्वाध्यायः महर्षि व्यास कहते हैं– **'प्रणवादिपवित्राणां जपो मोक्षशास्त्राणामध्ययनं वा।'** अर्थात्, प्रणव-ओंकार का जप करना तथा मोक्ष की ओर ले जानेवाले वेद-उपनिषद्, योगदर्शन, गीता आदि जो सत्यशास्त्र हैं, इनका श्रद्धापूर्वक अध्ययन करना स्वाध्याय है। हम यदि इस स्वाध्याय शब्द पर शाब्दिक दृष्टि से विचार करें तो इसके मुख्यार्थ दो हैं। एक है - **'सु-अध्ययनं स्वाध्यायः'** अर्थात् उत्तम अध्ययन। ऋषि-प्रतिपादित सत्-शास्त्रों का पूर्ण श्रद्धा और आस्था के साथ अध्ययन करना। उत्तम ग्रन्थों के अध्ययन से हमारे विचारों एवं संस्कारों में पवित्रता, दिव्यता तथा दृढ़ता आती है और विचारों की पवित्रता एवं दृढ़ता से ही जीवन में सात्त्विकता आती है। दूसरा स्वाध्याय का अर्थ है– **स्व-अध्ययन**, अर्थात् अपना अध्ययन, अपने-आपको पढ़ना, अपने अस्तित्व के सम्बन्ध में चिन्तन, विचार तथा निदिध्यासन करना कि मैं कौन हूँ? मुझे क्या करना चाहिए? मैं क्या कर रहा हूँ? मेरे जीवन का क्या लक्ष्य है? मुझे किसने पैदा किया है? और क्यों पैदा किया है?

इस प्रकार साधक सजग होकर विवेकपूर्वक विचार करेगा तो वह बाहर के वैभव में न फँसकर प्रणव (ओंकार) का जप तथा ऋषि-प्रतिपादित अध्यात्मविद्या, पराविद्या के ग्रन्थों का अध्ययन करता हुआ परमेश्वर का सान्निध्य प्राप्त कर सफल हो सकता है।

(ङ) ईश्वर-प्रणिधान : महर्षि व्यास कहते हैं : '**तस्मिन् परमगुरौ सर्वक्रियाणामर्पणम्**'। अर्थात् उस, गुरुओं के भी गुरु, परम गुरु परमात्मा में अपने समस्त कर्मों का अर्पण कर देना। भगवान् को हम वही समर्पित कर सकते हैं, जो शुभ है, दिव्य एवं पवित्र है। इसलिए साधक पूर्ण श्रद्धा, भक्ति एवं सर्वात्मना प्रयत्न से वही कार्य करेगा, जिसे वह भगवान् को समर्पित कर सके, अर्थात् उसकी समस्त क्रियाओं का ध्येय ईश्वर-अर्पण होगा। सच्चा भक्त सदा यही विचार करता है कि मुझे जीवन में शरीर, मन, बुद्धि, शक्ति, रूप, यौवन, समृद्धि, ऐश्वर्य, पद, सत्ता, मान आदि जो कुछ वैभव मिला है, सब ईश्वर-कृपा से ही मिला है। इसलिए मुझे अपनी समस्त शक्तियों का उपयोग अपने प्रियतम प्रभु को प्रसन्न करने के लिए ही करना है। इस जीवन का सम्पूर्ण प्रयास तथा पुरुषार्थ मेरा यही है कि मैं सब कुछ, अपने अस्तित्व-सहित, प्रभु में अर्पण कर दूँ और ऐसे भक्त पर ही भगवान् की कृपा एवं ईश्वरीय अमृत सदा बरसता है, जो सर्वात्मना ईश्वर के प्रति समर्पित हो जाता है।

यम-नियमों में बाधाएँ :

इन यम-नियमों के पालन करने में कई प्रकार की विघ्न-बाधाएँ हैं, जो हमें योग से विचलित करती हैं। महर्षि पतंजलि कहते हैं :

वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम्।

(योग. द. : २.३३)

यम-नियमों के अनुष्ठान में, इनके विपरीत हिंसा, असत्य, चोरी, असंयम, परिग्रह तथा अशुचिता, असन्तोष, विलासिता, स्वाध्याय का अभाव तथा ईश्वर से विमुखता अधर्म है। इनके प्रतिपक्ष का चिन्तन करके इनसे बचना चाहिए। साधक को एक बार यह दृढ़ निश्चय कर लेना चाहिए कि मैंने इस दुःखमयी संसाराग्नि के ताप से बचने के लिए जो इन हिंसा, असत्य, चोरी, असंयमादि वितर्कों का परित्याग किया है, इन हिंसादि को मैं भूलकर भी ग्रहण नहीं करूँगा; क्योंकि मैंने विवेकपूर्वक निश्चय करके इन दोषों का परित्याग किया है। अब मुझे श्वानवृत्ति (अर्थात्, जैसे कुत्ता उल्टी करने के बाद चाट लेता है, उसी तरह) नहीं होना। मैं दृढ़निश्चय होकर इन महाव्रतों का श्रद्धापूर्वक पूरी शक्ति के साथ पालन करूँगा, यही मेरे जीवन का स्वधर्म है। ऐसा कहते हुए यदि मुझे मरना भी पड़े तो मुझे '**स्वधर्मे निधनं श्रेयः**' स्वीकार है।

ये वितर्क क्या हैं? तथा इनसे बचने की प्रतिपक्ष-भावना क्या है? इसके सम्बन्ध में महर्षि पतंजलि कहते हैं :

वितर्का हिंसादयः कृतकारितानुमोदिता लोभक्रोधमोहपूर्वका
मृदुमध्याधिमात्रा दुःखाज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम्।

(योग.द. : २.३४)

ये हिंसा, असत्य, चोरी आदि वितर्क-कृत – अर्थात् स्वयं किये हुए, कारित-दूसरों के द्वारा कराये गये और अनुमोदित-अनुमोदन (समर्थन) किये गये, लोभ, क्रोध और अज्ञान के कारण उत्पन्न होनेवाले हैं। ये मृदु, मध्य

और तीव्र भेदवाले तथा अनन्त-असीम दुःख और अज्ञान रूप फल देनेवाले हैं। यह विचार ही प्रतिपक्ष भावना या चिन्तन है। इन हिंसा एवं असत्यादि वितर्कों (बाधाओं) में से हम उदाहरणार्थ हिंसा को लेते हैं।

हिंसा के प्रकार, जिनसे साधकों को बचना चाहिए :

यह हिंसा तीन प्रकार की होती है। **प्रथम कृत** - जो स्वयं अपने मन, वचन तथा कर्म से किसी की हिंसा करना, **द्वितीय कारित** - स्वयं प्रत्यक्ष रूप से तो किसी की हिंसा नहीं करना, परन्तु दूसरों से करवाना तथा **तृतीय अनुमोदित**- हिंसा के लिए दूसरों को प्रेरित करना या दूसरों द्वारा की गई हिंसा का अनुमोदन करना। तीन प्रकार की हिंसाओं के लोभ, क्रोध और मोहपूर्वक होने से पुनः तीन-तीन भेद हैं। मांस, चमड़ा, भूमि, भवन तथा अन्य किसी लोभ के लिए कृत, कारित तथा अनुमोदित लोभजन्य हिंसा है। इसी प्रकार क्रोधजन्य हिंसा (कृत, कारित तथा अनुमोदित तीनों प्रकार की) इसलिए करना कि इस हिंसित होनेवाले प्राणी ने मेरा कोई अनिष्ट किया है। मोह के कारण कृत, कारित तथा अनुमोदित हिंसा इसलिए की जाती है कि मेरी स्त्री, पुत्र अथवा किसी प्रियजन का स्वार्थ सिद्ध होने से मेरा स्वार्थ सिद्ध हो जायेगा। लोभ, क्रोध एवं मोहपूर्वक की गई हिंसा के पुनः प्रत्येक के तीन-तीन भेद किये गये हैं— मृदु, मध्य एवं अधिमात्र। लोभ, क्रोध, मोह की मात्रा कम होने से मृदु हिंसा (हिंसा कम मात्रा में), इनकी मात्रा मध्य स्तर एवं अधिक स्तर होने से हिंसा भी मध्यस्तर एवं अधिमात्र स्तर की होती है। इन मृदु, मध्य, अधिमात्र की हिंसा में भी प्रत्येक के पुनः तीन-तीन भेद किये गये हैं। यथा मृदु स्तर की हिंसा के तीन भेद हैं - (१) मृदु-मृदु : मृदुस्तर की हिंसा में सबसे कम हिंसा का होना; (२) मध्य मृदु : मृदु हिंसा से कुछ अधिक हिंसा होना; (३) तीव्र मृदु : मृदु स्तर की ही सीमा में सबसे अधिक हिंसा का होना। इसी तरह से 'मध्यस्तर' एवं 'अधिमात्रस्तर' हिंसा के भी तीन-तीन भेद होते हैं. इस प्रकार हिंसा ८१ प्रकार की होती है। यह ८१ भेदवाली हिंसा नियम, विकल्प और समुच्चय-भेद से असंख्य भेदोंवाली हो जाती है। इसी प्रकार हिंसा की तरह ही असत्य आदि अन्य वितर्कों के भी ८१-८१ प्रकार समझने चाहिए। असत्य, चोरी, ब्रह्मचर्य तथा परिग्रह भी स्वयं करना, दूसरों से करवाना तथा कोई अन्य कर रहा हो तो उसका अनुमोदन करना भी साधक के लिए बाधक है। स्वयं झूठ न बोलकर दूसरों से बुलवाना तथा झूठे व्यक्तियों का अनुमोदन करना भी असत्य ही है। इसी प्रकार चोरी करना, दूसरों से करवाना तथा अनुमोदन करना सब चोरी के अन्तर्गत ही है। स्वयं तो ब्रह्मचर्य का पालन न करना परन्तु, दूसरों को ब्रह्मचर्य करवाना तथा ब्रह्मचर्य के लिए प्रेरित करना भी पूर्ण ब्रह्मचर्य नहीं हो सकता। इसी प्रकार अपरिग्रह के विषय में जानना चाहिए। कृत-कारित-अनुमोदित की तरह ही असत्य-चोरी आदि के अन्य लोभ-क्रोध-मोहपूर्वक आदि भेद हिंसा की तरह ही समझने चाहिए और साधक को अपने मन में यह दृढ़ संकल्प धारण करना चाहिए कि ये वितर्क निश्चय ही दुःख-रूप तथा अज्ञान-रूप अनन्त अशुभ फलों के देनेवाले हैं। इस प्रकार प्रतिपक्ष-वितर्क एवं विरोधी भावना बनाकर हिंसा, असत्य आदि से बचकर निरन्तर योगानुष्ठान करते हुए आत्मसाक्षात्कार के मार्ग पर निरन्तर आगे बढ़ना चाहिए।

यम-नियमों के अनुष्ठान का फल:

(क) अहिंसा के अनुष्ठान का फल:

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।

(योग. द. : २.३५)

साधक में अहिंसा की प्रतिष्ठा होने पर जो प्राणी उस योगी पुरुष के संग में रहते हैं, उनका भी हिंसा-वैरभाव छूट जाता है। जब योगी पुरुष पूर्ण रूप से अहिंसा का मनसा-वाचा-कर्मणा पालन करता है, जब योगी पुरुष सब प्राणियों के प्रति हृदय से सहज, निश्छल, निःस्वार्थ स्नेह-प्रेम करता है, तब यह कैसे सम्भव है कि उसके प्रति कोई भी वैर भाव रखे। योगी पुरुष के सान्निध्य से केवल मनुष्यों का ही वैरभाव नहीं छूटता - सर्प, सिंह, व्याघ्रादि हिंस्त्र जीव भी हिंसा छोड़ देते हैं।

(ख) सत्याचरण का फल:

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्।

(योग.द. : २.३६)

सत्य के पूर्ण पालन का फल है कि पूर्ण सत्याचरण करनेवाला योगी पुरुष जो कह देता है, वही हो जाता है। जो सत्य ही मानता, बोलता और वैसा ही आचरण भी करता है, उसकी वाणी अमोघ हो जाती है। इसलिए आजतक जितने भी महापुरुष, योगिराज हुए, उनके जीवन में हम देखते हैं कि उन्होंने जो कुछ भी कहा, वही हुआ है। परन्तु यहाँ यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि योगी पुरुष कभी असम्भव, अयुक्त तथा हानिकारक वाणी का प्रयोग नहीं करते। योगी पुरुष सदा सत्य एवं शुभ ही उच्चारण करते हैं। इसलिए योगीजनों का एक शब्द ही जीवन को रूपान्तरित कर देता है, जीवन के प्रवाह को शुभ की ओर बदल देता है। बहुत बड़ी शक्ति होती है, सत्यवादी महापुरुषों में।

(ग) अस्तेय के पालन का फल:

अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्।

(योग.द. : २.३७)

पूर्णरूप से चोरी का त्याग कर देने पर साधक को चारों ओर से रत्नों की प्राप्ति होने लगती है। यह नितान्त सत्य भी है कि योगी पुरुष, चोरी की बातें तो बहुत दूर की है, किसी पदार्थ की इच्छा ही नहीं करते कि यह मेरे पास होनी चाहिए। योगी पुरुष को जीवन-निर्वाह के लिए जो कुछ चाहिए, उसे भगवान् स्वतः प्रदान करते हैं।

यह दुनिया का नियम है कि जो यहाँ माया को बहुत अधिक चाहता है, माया उतनी ही आगे-आगे भागती है तथा जो माया का त्याग करते हैं, माया उन्हीं के पीछे दौड़ती है। योगी महापुरुषों की भी यही स्थिति होती है। वे पूर्ण निर्लोभ निःस्पृह ही होते हैं, इसलिए दुनिया के वैभवशाली पुरुष उनको सब प्रकार के ऐश्वर्य, रत्न-आभूषण दिलाते हैं और उनके चरणों में अर्पित कर देते हैं और वे योगी पुरुष भी पुनः उन रत्नादि ऐश्वर्यों को समस्त मानवता के हित में अर्पित कर देते हैं।

(घ) ब्रह्मचर्य के पालन का फल:

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः।

(योग.द. : २.३८)

ब्रह्मचर्य के पूर्णरूप से पालन करने से योगी पुरुष का ओज, तेज, कान्ति, वीर्य, बल तथा पराक्रम बढ़ जाता है। बिना ब्रह्मचर्य-पालन के कोई भी पुरुष योगी नहीं हो सकता।

(ङ) अपरिग्रह के अनुष्ठान का फल:

अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः।

(योग.द. : २.३९)

अपरिग्रह का फल है कि मनुष्य विषयासक्ति से रहित होकर सदा जितेन्द्रिय रहता है। तब मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ और मुझे क्या करना चाहिए? इत्यादि शुभगुणों का विचार कर योगी भौतिक पदार्थों का संग्रह नहीं करता है, किन्तु जिस आत्मबोध के होने से जन्म-मरण के बन्धन से छुटकारा मिलता है, वह उस स्थिति को प्राप्त कर लेता है।

(च) शौच के अनुष्ठान का फल:

शौचात्स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्गः।

(यो.द. : २.४०)

शरीर की बार-बार जलादि से शुद्धि करता हुआ साधक जब यह अनुभव करता है कि इस शरीर को मैं इतना शुद्ध करने का प्रयत्न करता हूँ, फिर भी यह शरीर और अधिक मलीन ही होता रहता है, इसमें चारों ओर से दुर्गन्ध ही निकलता रहता है तो साधक को स्वाङ्ग-जुगुप्सा – अपने शरीर के अङ्गों से ग्लानि, घृणा होने लगती है तथा दूसरों के शरीर को भी वह जब देखता है, तब उसको सबके शरीर मलमूत्र आदि से भरे हुए दिखते हैं और वह दूसरे स्त्री-पुरुष आदि से अपने शरीर के स्पर्श की इच्छा नहीं करता। आलिंगन आदि से भी उसे घृणा होने लगती है। महर्षि व्यास भी कहते हैं :

स्थानाद् बीजादुपष्टम्भान्निस्स्यन्दान्निधनादपि।
कायमाधेयशौचत्वात् पण्डिता ह्यशुचिं विदुः।।

(यो० द० : व्यासभाष्य

अर्थात्, यह भौतिक शरीर पवित्र नहीं है; क्योंकि यह शरीर मल-मूत्रमय योनि से पैदा होता है। रजवीर्यादि रू से निर्मित होने से, मल, मूत्र-स्थान एवं रोमकूप और मुखादि से भी निरन्तर दुर्गन्ध निकलने तथा मरणोपरान्त शव के भी अति दुर्गन्धमय होने से यह शरीर पवित्र नहीं है, अपितु मल का भण्डार है। इस शरीर की बार-बा जलादि से शुद्धि करने पर भी यह सदा मलीन ही रहता है। इस प्रकार विचार करके साधक की शरीर

आसक्ति हट जाती है। वह शरीर से मोह नहीं करता है। वह प्रेम भी शरीर से नहीं, आत्मा से करता है। यह तो बाह्य शौच (शुद्धि) का फल है। आभ्यन्तरिक शुद्धि का फल महर्षि पतंजलि बताते हैं :

सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च।

(यो.द. : २.४१)

सत्य, अहिंसा, विद्या, तप आदि आभ्यन्तरिक शौच से अन्तःकरण की शुद्धि, मन की प्रसन्नता और एकाग्रता, इन्द्रियों पर विजय तथा आत्मा को जानने की योग्यता प्राप्त होती है।

(छ) सन्तोष के अनुष्ठान का फल:

सन्तोषादनुत्तमः सुखलाभः।

(यो. द. : २.४२)

सन्तोष से जो सुख होता है, वह सबसे उत्तम सुख है। सन्तोष-सुख को ही मोक्षसुख भी कहते हैं। महर्षि व्यास भी कहते हैं :

यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम्।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम्॥

संसार में कामरूप तथा दिव्य स्वर्ग की कल्पनायुक्त जो स्वर्गीय महान् सुख हैं, ये दोनों ही प्रकार के भौतिक सुख तृष्णा के नाश होने पर प्राप्त होनेवाले सुख के सोलहवें अंश के भी समान नहीं हो सकते। अतः सन्तोष-सुख से बढ़कर दुनिया में और कोई सुख नहीं।

तृष्णा ही हमें पग-पग पर सताती है। भर्तृहरि कहते हैं– **तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः।** (वैराग्यशतक : ७) अर्थात् तृष्णा की पूर्ति करनेवाले बूढ़े हो जाते हैं परन्तु तृष्णा कभी बूढ़ी नहीं होती।

(ज) तप के अनुष्ठान का फल:

कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात् तपसः।

(यो. द. : २.४३)

तप के अनुष्ठान से अशुद्धि के क्षीण होने से, साधक का शरीर तथा इन्द्रियाँ सदा दृढ़ एवं नीरोग रहती हैं। महर्षि दयानन्दजी महाराज तप के सम्बन्ध में कहते हैं :

''यथार्थ शुद्धभाव, सत्य मानना, सत्य बोलना, सत्य करना, मन को अधर्म में न जाने देना, शरीर, इन्द्रिय और मन से शुभकर्मों का आचरण करना, वेदादि सत्य विद्याओं का पढ़ना-पढ़ाना, वेदानुसार आचरण करना आदि उत्तम धर्मयुक्त कर्मों का नाम तप है। धातु को तपा के चमड़ी जलाना तप नहीं कहलाता।''

(झ) स्वाध्याय के अनुष्ठान का फल:

स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः।

(यो.द. : २.४४)

स्वाध्याय का अनुष्ठान करनेवाले योगी को विद्वान्, देव, मन्त्रद्रष्टा ऋषि और सिद्ध पुरुष दिखाई दे जाते हैं और साधक की साधना में सहायक हो जाते हैं। जब साधक प्रणव-ओंकार का जप तथा मोक्षशास्त्रों का निरन्तर अध्ययन करता है, तब उसको जब-जब योग-साधना करते हुए कठिनाई या बाधा आती है, तब सिद्ध-सन्त पुरुष प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से उसका मार्गदर्शन करते हैं। ईश्वरीय व्यवस्था के अनुसार साधक को मार्गदर्शक सिद्ध गुरु मिल ही जाते हैं।

(ण) ईश्वर-प्रणिधान का फल:

समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्।

(यो. द. : २.४५)

ईश्वर-प्रणिधान, अर्थात् अपनी समस्त क्रियाओं को परमगुरु परमेश्वर के प्रति समर्पित कर उन कार्यों के फल की इच्छा का परित्याग कर देने से **(ईश्वरप्रणिधानं सर्वक्रियाणां परमगुर्वर्पणं तत्फलसंन्यासो वा। - व्यासभाष्य : २.१)** साधक को समाधि की सिद्धि (प्राप्ति) सुगमता से हो जाती है।

यम-नियमों तथा उनका अनुष्ठान करने पर प्राप्त होनेवाली सिद्धियों (फलों) का वर्णन करने के बाद योग के अंगों में तृतीय अंग आसन का वर्णन करते हैं।

३. आसन:

स्थिरसुखमासनम्।

(यो.द. : २.४६)

पद्मासन, भद्रासन, सिद्धासन या सुखासन आदि किसी भी आसन में स्थिरता और सुखपूर्वक बैठना आसन कहलाता है। साधक को जप, उपासना एवं ध्यान आदि करने के लिए किसी भी आसन में स्थिरता और सुखपूर्वक बैठने का लम्बा अभ्यास भी करना चाहिए। जो इन आसनों में नहीं बैठ सकते या रोगी हैं, उनके लिए महर्षि व्यास कहते हैं कि वे सोपाश्रय आसन, अर्थात् कुर्सी अथवा दीवार आदि का भी आश्रय (सहारा) लेकर प्राणायाम-ध्यान आदि का अभ्यास कर सकते हैं। जप एवं ध्यानादि-रूप उपासना के लिए आसन का अभ्यास अति आवश्यक है। किसी ध्यानात्मक आसन के करते समय मेरुदण्ड सदा सीधा होना चाहिए। भूमि समतल हो, बिछाने के लिए गद्दीदार वस्त्र, कुशा या कम्बल आदि ऐसा आसन होना चाहिए जो विद्युत् का कुचालक तथा आरामदायक हो। उपासना के लिए एकान्त स्थान, शुद्ध वायु, मक्खी-मच्छर आदि से रहित वातावरण उपयुक्त है।

आज समाज में कुछ ऐसी भ्रान्ति फैलती जा रही है कि कुछ लोग मात्र योग के कुछ आसनों को करके अपने-आप को योगी कहने लगते हैं और कुछ लोग उनको योगी भी समझने लगते हैं। योगासन तो योग का एक अंगमात्र है। योगी होने के लिए तो अहिंसा, सत्य, अस्तेय व ब्रह्मचर्यादि रूप यम-नियमों सहित अष्टांग योग का पूर्ण पालन करते हुए दीर्घकाल तक श्रद्धापूर्वक समाधि का अभ्यास करना पड़ता है।

हठयोग में ८४ प्रकार के आसन बताये गये हैं। ध्यानात्मक आसनों के अतिरिक्त हठयोग में दूसरे ऐसे आसन वर्णित हैं, जिनका सम्बन्ध शारीरिक एवं मानसिक आरोग्य से है। इन आसनों को करने से शरीर के प्रत्येक अंग-प्रत्यंग को पूरी क्रियाशीलता मिलती है एवं वे सक्रिय, स्वस्थ और लचीले बन जाते है। प्रकरण ५ से १० तक विभिन्न रोगों में उपयोगी आसनों का सचित्र वर्णन किया गया है, पाठकगण वहीं देखें।

४. प्राणायाम:

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिर्विच्छेदः प्राणायामः।

(योगदर्शन : २.४९)

आसन के सिद्ध हो जाने पर श्वास-प्रश्वास की गति को यथाशक्ति नियन्त्रित करना प्राणायाम कहलाता है। योगदर्शन के अनुसार प्राणायाम के चार प्रकार हैं :

क. बाह्यवृत्ति, ख. आभ्यन्तरवृत्ति, ग. स्तम्भवृत्ति, घ. बाह्याभ्यन्तर-विषयाक्षेपी

बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः।

(यो.द. : २.५०)

बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः।

(यो.द. : २.५१)

(क) बाह्यवृत्ति प्राणायाम

विधि:

- सिद्धासन वा पद्मासन में विधिपूर्वक बैठकर श्वास को एक ही बार में यथाशक्ति बाहर निकाल दें।
- बाहर निकालकर मूलबन्ध, उड्डीयान बन्ध एवं जालन्धर बन्ध लगाकर श्वास को यथाशक्ति बाहर ही रोककर रखें।
- जब श्वास लेने की इच्छा हो तो बन्धों को हटाते हुए धीरे-धीरे श्वास लें।
- भीतर लेकर उसे बिना रोके ही पुनः पूर्ववत् श्वसन-क्रिया करें। इस प्रकार इसे ३ से २१ बार तक कर सकते हैं।

लाभ:

यह हानिरहित प्राणायाम है। इससे मन की चंचलता दूर होती है। जठराग्नि प्रदीप्त होती है। उदर रोगों में लाभप्रद है। बुद्धि सूक्ष्म और तीव्र होती है। शरीर का शोधक है। वीर्य की ऊर्ध्वगति करके स्वप्नदोष, शीघ्रपतन आदि धातु-विकारों की निवृत्ति करता है।

भ्रूमध्य में लाकर, त्रिकुटि के तले स्थापित करो, और नाभि के नीचे ठहरने और बाहर से भीतर आने के स्वभाववाले अपान वायु को बाहर से लाकर नासिका के छिद्रों के भीतर लेकर स्थापित करो। अब दोनों को धक्का देकर एक दूसरे के विरुद्ध क्रिया करके लड़ाई कराओ, अर्थात् न तो प्राण को बाहर निकलने दो और न अपान को भीतर जाने दो। इस प्रकार विरुद्ध क्रिया करने से दोनों प्राण वश में हो जाते हैं। इस प्राणायाम को करते समय मन, इन्द्रियादि को त्रिकुटि में ध्यान द्वारा स्थिर करो।

(ध्यानयोग-प्रकाश, द्वितीय अध्याय)

यही बात इस प्राणायाम के विषय में भगवद्गीता में लिखी है :

स्पर्शान् कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवौ।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ।।

(भगवद्गीता : ५.२७)

बाह्यविषय, रूप, रस, गन्ध आदि को त्यागकर मन को अन्दर की ओर एकाग्र करें और दोनों भौहों के मध्य जिसे त्रिकुटि, अथवा भृकुटि कहते हैं, वहाँ ध्यान को स्थिर करें। नासिका-छिद्रों द्वारा ही संचार करनेवाले प्राण और अपान दोनों वायुओं को समान करके, अर्थात् एक दूसरे के विरुद्ध क्रिया करके समभाव में स्थापित करनेवाला, जो कोई मननशील योगी मन, इन्द्रियों एवं बुद्धि को वश में करके, सतत मोक्षमार्ग में तत्पर, इच्छा, भय एवं क्रोध से रहित होता है, वह सदा मुक्त ही है।

यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः।।

(भगवद्गीता : ५.२८)

यही विषय निम्नांकित श्लोकों में भी वर्णित है :

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथा परे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः।।
अपरे नियताहाराः प्राणान् प्राणेषु जुह्वति।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षयितकल्मषाः।।

(भगवद्गीता : ४.२९-३०)

'योग -साधना एवं योग चिकित्सा-रहस्य' पुस्तक के प्राणायाम -विषयक सन्दर्भ को पृथक् कर रंगीन चित्रों के साथ भव्य आकर्षक रूप में अलग से प्रकाशित किया गया है। अतः पाठकों से निवेदन है कि प्राणायाम विषयक सम्पूर्ण परिज्ञान हेतु पूज्य स्वामीजी द्वारा लिखित 'प्राणायाम-रहस्य' पुस्तक अवश्य पढ़ें।

– प्रकाशक

ये प्राणायाम दर्शनशास्त्र में महर्षि पतंजलि द्वारा प्रोक्त हैं। शारीरिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य हेतु 'हठयोग-प्रदीपिका' ग्रन्थ में इन्हीं प्राणायामों के अन्तर्गत जो आभ्यन्तर कुम्भक है, उसके आठ भेद हैं :

सूर्यभेदनमुज्जायी सीत्कारी शीतली तथा।
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा प्लाविनीत्यष्ट कुम्भकाः।।

(हठयोगप्रदीपिका)

५. प्रत्याहार :

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।

(यो.द. : २.५४)

इन्द्रियों के अपने-अपने विषय रूप-रसादि का सन्निकर्ष न होने पर चित्तवृत्ति के अनुरूप ही इन्द्रियाँ हो जाती हैं, इसलिए जब साधक विवेक-वैराग्य आदि से अपने मन के ऊपर नियन्त्रण कर लेता है, तब इन्द्रियों का जीतना अपने-आप हो जाता है; क्योंकि मन ही इन्द्रियों को चलानेवाला है। यह मनोजय अथवा विषयों से विमुख होकर मन तथा इन्द्रियों को अन्तर्मुखी करना ही प्रत्याहार है। आङ्पूर्वक 'हृ' धातु आहरण-आकृष्ट करने के अर्थ में प्रयुक्त होती है। प्रति उपसर्ग से उसके विपरीत अर्थ (विमुख होने) को द्योतित किया गया है। इस प्रत्याहार का फल बताते हुए महर्षि पतंजलि कहते हैं :

ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम्।

(यो.द. : २.५५)

प्रत्याहार के द्वारा साधक का इन्द्रियों पर पूर्ण अधिकार हो जाता है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि की आसक्ति व्यक्ति को आत्मकल्याण के रास्ते से दूर हटाती है। एक-एक इन्द्रिय की आसक्ति मन को विचलित कर देती है। इन्द्रियों के विषयों (रूप-रसादि) में आसक्ति रखनेवाले व्यक्ति की प्रीति भोगों में होती है, भगवान् में नहीं। इसलिए अभ्यास और वैराग्य के द्वारा यथार्थ बोध से ही प्रत्याहार सिद्ध होने पर यह इन्द्रिय-जय होता है। फिर साधक को भगवान् में प्रीति, परम रस और परम सुख का अनुभव होने लगता है और सारा संसार दुःखमय प्रतीत होता है :

परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः।

(यो.द. : २.१५)

कर्माशय (संचित कर्मों का समूह) का विपाक (फल) ही जन्म, आयु और भोग होता है। ये जन्म, आयु तथा भोग पुण्य कर्मों के कारण सुखमय तथा अपुण्य कर्मों के कारण दुःखमय होते हैं। परन्तु योगी के लिए लौकिक विषयों का सुख भी दुःखमय ही होता है। इसका कारण यह है कि यह शब्द, स्पर्श, रूप, रस आदि वासनारूप विषय-सुख, व्यक्ति को अविद्यावश ही प्रतीत होता है। जब इन सुखों के परिणाम आदि पर विचार किया जाये, तब निश्चित रूप से हम पायेंगे कि ये समस्त सांसारिक सुख भी दुःखमय ही होते हैं; क्योंकि ये सुख प्राणियों को पीड़ा

दिये बिना नहीं भोगे जा सकते तथा इन सुखों में भी सूक्ष्म परिणाम-सन्ताप एवं संस्कार-रूप से जो दुःख मिश्रित हैं, उन्हें सामान्यजन अनुभव नहीं कर पाते। किन्तु योगी उनके परिणामों को जान लेता है। अतः उसके लिए, लोगों को सुख प्रतीत होनेवाला लौकिक सुख भी दुःखमय ही है।

इसलिए साधक दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति के लिए ईश्वर-प्राप्ति हेतु पूर्ण पुरुषार्थ करता है।

यह यम से प्रत्याहार पर्यन्त बहिरंग योग है। इसके बाद यहाँ हम धारणा, ध्यान तथा समाधि-रूप अन्तरंग योग का संक्षेप में वर्णन करेंगे।

६. धारणा :

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।

(योग.द. : ३.१)

नाभिचक्र, हृदय-पुण्डरीक, मूर्धाज्योति, भ्रूमध्य, ब्रह्मरन्ध्र, नासिकाग्र, जिह्वाग्र इत्यादि शारीरिक प्रदेशों में से किसी एक स्थान पर मन का निग्रह या एकाग्र होना धारणा कहलाता है। प्रत्याहार द्वारा जब इन्द्रियाँ एवं मन अन्तर्मुख होने लगें, तब उनको किसी स्थान-विशेष पर वृत्तिमात्र से स्थिर करने का नाम ही धारणा है। इस प्रकार मन को एक प्रकार से स्थूल विषय से हटाकर सूक्ष्म लक्ष्य आत्मा-परमात्मा आदि पर केन्द्रित करने को धारणा कहते हैं। धारणा ध्यान की नींव है। ज्यों-ज्यों धारणा का अभ्यास सुदृढ़ होगा, ध्यान भी साथ-साथ होने लगेगा।

७. ध्यान :

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्।

(योग.द. : ३.२)

उस धारणा किये हुए, अर्थात् नाभिचक्र, भ्रूमध्य या हृदय आदि में ध्येय रूप परमेश्वर में प्रत्यय एकतानता-ज्ञान का सदृशप्रवाह (एक-सा प्रवाह) ध्यान है। जैसे नदी जब समुद्र में प्रवेश करती है, तब वह समुद्र के साथ एकाकार हो जाती है। सदृश-प्रवाह हो जाती है। वैसे ही ध्यान के समय सच्चिदानन्द परमेश्वर के अतिरिक्त अन्य विषय का स्मरण नहीं करना, अपितु उसी अन्तर्यामी ब्रह्म के आनन्दमय, ज्योतिर्मय एवं शान्तिमय स्वरूप में मग्न हो जाना ध्यान है।

ध्यान हमारे जीवन के साथ प्रतिपल जुड़ा हुआ है। भारतीय संस्कृति में तो ध्यान प्रत्येक क्रिया का पूरक होता था। इसी लिए आज भी हमें अपने घर एवं परिवार के बड़े व्यक्ति किसी कार्य को विधिवत् सम्पन्न करने हेतु जब कहते हैं, तब सर्वत्र यही वाक्य होता है— भाई ध्यान से पढ़ना, ध्यान से चलना, प्रत्येक कार्य को ध्यान से करना। आज हम ध्यान शब्द का प्रयोग तो करते हैं, परन्तु यह ध्यान क्या है, उस ओर किसी का ध्यान नहीं जाता है। लेकिन जीवन के प्रत्येक कार्य से साथ जुड़े इस ध्यान शब्द से हम यह तो जान ही सकते हैं कि ध्यान जीवन का

अपरिहार्य अंग है। ध्यान के बिना जीवन अधूरा है। ध्यान के बिना हम अपने किसी भी भौतिक तथा आध्यात्मिक लक्ष्य में सफल नहीं हो सकते। ध्यान से ही हम सदा आनन्दमय एवं शान्तिमय जीवन जी सकते हैं। यद्यपि ध्यान अपने-आपमें एक बहुत बड़ी यौगिक प्रक्रिया है, तथापि ध्यान की कुछ विधियों पर हम संक्षेप में प्रकाश डालेंगे जिससे साधकों को कुछ दिशा-निर्देश मिल सके।

ध्यान के लिए कुछ दिशा-निर्देश:

- ध्यान करने से पहले प्राणायाम अवश्य करें; क्योंकि प्राणायाम के द्वारा मन पूर्ण शान्त एवं एकाग्र हो जाता है। शान्त मन के द्वारा ही धारणा और ध्यान हो सकता है।
- कपालभाति और अनुलोम-विलोम प्राणायाम विधिपूर्वक करने से मन निर्विषय हो जाता है, अतः ध्यान स्वतः लगने लगता है। साधक जब कम से कम ३ मिनट कपालभाति और ५ से १० मिनट अनुलोम-विलोम प्राणायाम करता है, तब उसके मूलाधार चक्र में सन्निहित ब्रह्म की दिव्यशक्ति जागरित होकर ऊर्ध्वगामी होने लगती है, जिससे समस्त चक्रों और नाड़ियों का शोधन हो जाता है। आज्ञाचक्र में, एक दिव्य ज्योतिपुंज में, सच्चिदानन्द-स्वरूप ओंकार में मन अवस्थित होने लगता है। अत्यन्त चंचल मन भी प्राणायाम के द्वारा एकाग्र हो जाता है।
- ध्यान करते समय ध्यान को ही सर्वोपरि महत्त्व दें। ध्यान के समय किसी भी अन्य विचार को, चाहे वह कितना ही शुभ क्यों न हो, महत्त्व न दें। दान करना, सेवा एवं परोपकार करना, विद्याध्ययन, गुरु-सेवा तथा गोसेवा आदि पवित्र कार्य हैं, परन्तु इनका भी ध्यान के समय ध्यान या चिन्तन न करें। ध्यान के समय चिन्तन, मनन, निदिध्यासन एवं साक्षात्कार का लक्ष्य ईश्वर है।
- ध्यान के समय मन एवं इन्द्रियों को अन्तर्मुखी बनायें तथा ध्यान से पहले प्रतिदिन मन में यह चिन्तन भी अवश्य करें कि मैं प्रकृति, धन, ऐश्वर्य, भूमि, भवन, पुत्र, पौत्र, भार्या आदि रूप नहीं हूँ। ये सब व्यक्त-अव्यक्त सत्त्व मेरे स्वरूप नहीं हैं। मैं समस्त जड़ एवं चेतन बाह्य पदार्थों के बन्धन से परे हूँ। यह शरीर भी मेरा स्वरूप नहीं है। मैं शरीर, इन्द्रियों तथा इन्द्रियों के विषय - शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि से रहित हूँ। मैं मन तथा मन के विषय, काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं अहंकार आदि वासना-रूप नहीं हूँ। मैं अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश-रूप पंचक्लेशों से भी रहित हूँ। मैं आनन्दमय, ज्योतिर्मय, प्रकाशमय, शान्तिमय, परम सुखमय, त्रिगुणातीत, भावातीत, शुद्धसत्त्व हूँ। मैं अमृतपुत्र हूँ। मैं उसी ब्रह्म चेतना में अवस्थित हूँ। जैसे बूँद समुद्र से आकाश की ओर उठती है, फिर भूमि पर गिरकर नदियों के प्रवाह से होकर पुनः सागर में ही समाहित हो जाती है, सागर को छोड़कर बूँद रह नहीं सकती है, मैं भी उस आनन्द के सिन्धु परमेश्वर में बूँद से समुद्र-रूप होना चाहता हूँ। वही विधाता हमें जीवन, प्राण, शक्ति, गति, ओज, शान्ति, सुख एवं समस्त भौतिक ऐश्वर्य प्रदान करता है। प्रभु ने ही हमें शक्ति, जन्म, आयु, शरीर, बुद्धि, शरीर के साधन, घर-परिवार, माता-पिता आदि सब कुछ प्रदान किया है। वही प्रभु

मुझे सतत आनन्द दे रहा है, प्रभु की शान्ति एवं परम सुख मुझपर सब ओर से बरस रहा है। एक पल भी वह आनन्दमयी माँ एवं परम रक्षक पिता मुझे अपने से दूर नहीं करता। मै सदा प्रभु में हूँ और प्रभु सदा मुझमें हैं, यह तादात्म्य-भाव, तद्रूपता एवं तदाकार भाव ही हमें परम आनन्द प्रदान करेगा। भगवान् अपने आनन्द की अजस्र वृष्टि कर रहे हैं। यदि हम फिर भी उस आनन्द को अनुभव न करें तो इसमें हमारा ही दोष है।

- साधक को सदा विवेक-वैराग्य के भाव में रहना चाहिए। स्वयं को द्रष्टा-साक्षी में अवस्थित रखकर अनासक्त भाव से समस्त शुभ कार्यों को भगवान् की सेवा मानकर करना चाहिए। कर्तृत्व का अहंकार व फल की अपेक्षा से रहित कर्म भगवान् का क्रियात्मक ध्यान है।
- बाह्य सुखप्राप्ति का विचार एवं सुख के समस्त साधन सब दुःख-रूप हैं। संसार में जबतक सुख-बुद्धि बनी रहेगी, तबतक भगवत्समर्पण, ईश्वर-प्रणिधान नहीं हो सकेगा तथा बिना ईश्वर-प्रणिधान के ध्यान एवं समाधि तक पहुँचना असम्भव है।
- **तस्य वाचकः प्रणवः।** **(योग द. : १.२७)**

  तज्जपस्तदर्थभावनम्। **(योग द. : १.२८)**

  ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म। **(गीता : ८.१३)**

  ओं खं ब्रह्म। **(यजुर्वेद)**

ध्यान के लिए अर्थपूर्वक ओंकार-जप का अवलम्बन सर्वोत्तम है। भगवान् ने भ्रुवों, आँख, नाक, ओष्ठ, कान, हृदय, छाती आदि समस्त अंगों की आकृति ओंकारमयी बनाई है।

यह पिण्ड (देह) तथा समस्त ब्रह्माण्ड ओंकारमय है। इस प्रकार साधक ओंकार का जप करता हुआ सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामी, सच्चिदानन्द ब्रह्म परमेश्वर को ही सर्वत्र अनुभव करता हुआ उसके दिव्य स्वरूप में समाहित होने लगता है। ओंकार कोई व्यक्ति या आकृति-विशेष नहीं, अपितु एक दिव्य शक्ति है, जो इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का संचालन कर रही है। जैसे इस पिण्ड शरीर में आत्मा दिखाई नहीं देती, फिर भी शरीर के सब कार्य आत्मा के अस्तित्व से ही सम्पन्न होते हैं, इसी प्रकार इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में वह ओंकार-रूप ब्रह्म, यद्यपि इन बाह्य आँखों से दिखाई नहीं देता, तथापि अपनी दिव्य शक्ति से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का संचालन कर रहा है। प्रणव के साथ-साथ वेदों के सबसे महान् मन्त्र गायत्री का भी अर्थपूर्वक जप एवं ध्यान किया जा सकता है।

- श्वास-प्रश्वास पर मन को एकाग्र करके प्राण के साथ उद्‌गीथ (ओंकार) की उपासना की जाती है। सभी इन्द्रियाँ सदोष हैं; क्योंकि आँखें शुभ-अशुभ दोनों प्रकार से देखती हैं। कान भद्र-अभद्र सुनते हैं, घ्राण गन्ध-दुर्गन्ध दोनों को ही सूँघते हैं, वाणी झूठ-सत्य बोलती है, रसना भक्ष्य-अभक्ष्य दोनों ही प्रकार का भक्षण करती है, मन में भी कुविचार एवं सुविचार आदि रूप में पूर्ण निर्दोषता नहीं है। प्राण पूर्ण निर्दोष एवं निर्विकार है। अतः निर्विकार एवं निर्दोष ब्रह्म के साक्षात्कार के लिए हमें निर्दोष प्राण का आश्रय लेकर

प्राण के साथ उद्‌गीथ उपासना करनी चाहिए। जब भी समय उपलब्ध हो, बैठ जायें और द्रष्टा बनकर श्वास-प्रश्वास को दीर्घ एवं सूक्ष्म गति से लेते और छोड़ते हुए प्रत्येक श्वास के साथ ओ३म् का ध्यान करें। श्वास लेते और छोड़ते समय श्वास की गति इतनी सूक्ष्म होनी चाहिए कि स्वयं को भी श्वास की ध्वनि की अनुभूति न हो तथा यदि नासिका के आगे रूई भी रख दें तो हिले नहीं। प्रयास करें कि एक मिनट में एक श्वास तथा एक प्रश्वास चले। इस प्रकार श्वास को भीतर तक देखने का भी प्रयत्न कीजिए। प्रारम्भ में श्वास के स्पर्श की अनुभूति मात्र नासिकाग्र पर होगी। धीरे-धीरे आप श्वास के गहरे स्पर्श को भी अनुभव कर सकेंगे। इस प्रकार कुछ समय तक श्वास के साथ द्रष्टा (साक्षी) भाव-पूर्वक ओंकार जप करने से ध्यान स्वतः होने लगता है। यही सहजयोग है तथा ध्यान करते-करते साधक सच्चिदानन्द-स्वरूप ब्रह्म के स्वरूप में तद्रूप होता हुआ समाधि के अनुपम दिव्य आनन्द को भी प्राप्त कर लेता है। साधक को सोते समय भी इस प्रकार ध्यान करते हुए सोना चाहिए, ऐसा करने से निद्रा भी योगमयी हो जाती है और साधक का सम्पूर्ण जीवन योगमय होने लगता है।

- इस प्रकार प्रत्येक मुमुक्षु को प्रतिदिन कम से कम एक घण्टा जप, ध्यान एवं उपासना अवश्य करनी चाहिए। ऐसा करने पर इसी जन्म में सम्पूर्ण दुःखों की समाप्ति और परमपिता परमेश्वर की अनुभूति हो सकती है। यह सदा स्मरण रखना चाहिए कि जीवन का मुख्य लक्ष्य आत्मसाक्षात्कार एवं प्रभु-प्राप्ति है, शेष सब कार्य और लक्ष्य गौण हैं। यदि हमने इस जीवन में अभी से ईश्वर-साक्षात्कार के मार्ग पर बढ़ना प्रारम्भ नहीं किया, तो उपनिषद् के ऋषि कहते हैं, महती विनष्टि है। इसलिए योग एवं ध्यान हमारे जीवन की आवश्यकता है।

८. समाधि:

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।।

(योग.द. : ३.३)

ध्यान में जब केवल ध्येयमात्र (ईश्वर) के स्वरूप या स्वभाव को प्रकाशित करनेवाला अपने स्वरूप से शून्य जैसा होता है, तब उसे समाधि कहते हैं।

आनन्दमय, ज्योतिर्मय एवं शान्तिमय परमेश्वर का ध्यान करता हुआ साधक ओंकार ब्रह्म परमेश्वर में इतना तल्लीन, तन्मय एवं तद्रूप-सा हो जाता है कि वह स्वयं को भी भूल-सा जाता है, मात्र भगवान् के दिव्य आनन्द का अनुभव होने लगता है, यही स्वरूपशून्यता है। मृत्युंजय महायोगी महर्षि दयानन्दजी महाराज कहते हैं कि ध्यान एवं समाधि में इतना ही भेद है कि ध्यान में तो ध्यान करनेवाला, जिस मन से, जिस चीज का ध्यान करता है, वे तीनों (ध्याता, ध्येय और ध्यान) विद्यमान रहते हैं। परन्तु समाधि में केवल परमेश्वर के आनन्दमय, शान्तिमय, ज्योतिर्मय स्वरूप एवं दिव्य-ज्ञान-आलोक में आत्मा निमग्न हो जाता है, वहाँ तीनों का भेदभाव नहीं रहता। जैसे मनुष्य जल में डुबकी लगाकर थोड़ा समय भीतर ही भीतर रुका रहता है, वैसे ही जीवात्मा परमेश्वर के आनन्द में मग्न होकर समाधि का आनन्द लेता है। इसी बात को ऋषि दूसरे शब्दों में यूँ भी कहते हैं कि जैसे अग्नि के बीच

लोहा डालने पर वह भी अग्नि रूप हो जाता है, वैसे ही परमेश्वर के दिव्यज्ञान के आलोक में आत्मा के प्रकाशमय होकर अपने शरीर आदि को भी भूले हुए के समान जानकर स्वयं को परमेश्वर के प्रकाश-स्वरूप आनन्द और पूर्ण ज्ञान से परिपूर्ण करने को समाधि कहते हैं।

श्रीभोज महाराज समाधि का अर्थ इस प्रकार करते हैं :

सम्यगाधीयत एकाग्रीक्रियते विक्षेपान् परिहृत्य मनो यत्र स समाधिः।

जिसमें मन को विक्षेपों से हटाकर यथार्थता से धारण किया जाता है, अर्थात् एकाग्र किया जाता है, वह समाधि है। योगदर्शन के प्रथम पाद में वर्णित सवितर्क समापत्ति को ध्यान की एक अवस्था समझना चाहिए; क्योंकि उसमें शब्द, अर्थ एवं ज्ञान के विकल्प होते हैं और निर्वितर्क समापत्ति को समाधि की अवस्था समझनी चाहिए। सम्प्रज्ञात समाधि की उन्नत अवस्था में ऋतम्भरा प्रज्ञा साधक को भगवत्प्रसाद के रूप में प्राप्त होती है। इसके बाद समाधि की भी उन्नत श्रेणी है - निर्बीज समाधि। इस स्थिति में संसार के विषय-भोग-वासनाओं के चित्त में संस्कार भी नहीं रहते, 'संस्कारों' के बीज-सहित नाश होने पर सब वृत्तियों का पूर्ण निरोध हो जाता है। फिर भव-बन्धन में बँधने की सम्भावना भी नष्ट हो जाती है, इसे 'निर्बीज समाधि' कहते हैं। यह योग की अथवा जीवन की पूर्णता है, जिसे प्राप्त करके महर्षि व्यास के शब्दों में योगी कहता है :

प्राप्तं प्रापणीयं, क्षीणाः क्षेतव्याः क्लेशाः, छिन्नः श्लिष्टपर्वा भवसंक्रमः।

यस्याविच्छेदाज्जनित्वा म्रियते मृत्वा च जायत इति।

ज्ञानस्यैव पराकाष्ठा वैराग्यम्।

एतस्यैव हि नान्तरक्षीयकं कैवल्यमिति॥

(योगसूत्र, व्यासभाष्यम् : १.१६)

ज्ञान की पराकाष्ठा (चरम सीमा) ही वैराग्य है। समाधि द्वारा ज्ञान के इस उच्चतम क्षितिज की प्राप्ति होने पर मोक्ष अवश्यम्भावी है, जिसे पाकर योगी इस प्रकार अनुभव करता है कि प्राप्त करने योग्य सब कुछ पा लिया, क्षीण करने योग्य अविद्यादि क्लेश (अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष-अभिनिवेश) नष्ट हो गये हैं, जिसके पर्व (खण्ड) मिले हुए हैं, ऐसा भव-संक्रमण (एक देह से दूसरे देह की प्राप्ति-रूप संसार का आवागमन) छिन्न-भिन्न हो गये हैं, जिसके छिन्न-भिन्न होने से प्राणी उत्पन्न होकर मरता है और मरकर पुनः उत्पन्न होता है।

इस प्रकार यहाँ संक्षेप में समाधि का वर्णन किया गया।

सूक्ष्म व्यायाम

शरीर की सन्धियों को स्वस्थ एवं स्नायु-मण्डल को शक्ति, स्फूर्ति एवं आरोग्य प्रदान करनेवाली सूक्ष्म व्यायाम की निम्नांकित क्रियाएँ हैं :

बैठने की स्थिति दण्डासन में:

विधि: बैठकर किये जानेवाले सभी आसनों को दण्डासन की स्थिति से प्रारम्भ करते हैं। दोनों पैर मिले हुए सामने सीधे रहें। कमर के दोनों ओर हाथों की हथेलियाँ भूमि पर टिकी हुई, अंगुलियाँ पीछे की ओर, हाथ तथा कमर सीधी रहे तथा निम्नलिखित के अनुसार अभ्यास करें।

१. पैर की अंगुलियों के लिए:

दोनों पैरों की अंगुलियों तथा अंगुष्ठों को आगे की ओर धीरे-धीरे बलपूर्वक दबायें। उसी तरह पीछे की ओर भी करें। एड़ियाँ स्थिर रखें। इस प्रकार आठ-दस बार करें।

२. एड़ी एवं पूरे पैर के लिए:

दोनों पैरों को मिलाते हुए पूरे पंजे को एड़ी-सहित धीरे-धीरे आगे एवं पीछे दबायें। आगे-पीछे दबाते समय एड़ी का जमीन पर घर्षण होगा। यह अभ्यास सियाटिका पेन तथा घुटनों के लिए उपयोगी है।
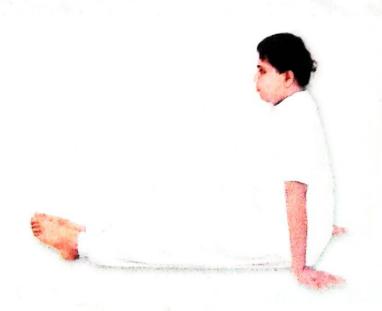
३. पंजों के लिए : दोनों पैरों को थोड़ी दूरी पर रखें। पहले दायें पैर के पंजों को वृत्ताकार घुमाते हुए पंजे से शून्य जैसी आकृति बनायें। इस रीति से पाँच-सात बार इस अभ्यास को दोहरायें। फिर इसको विपरीत दिशा से करें। इसी प्रकार दूसरे पैर और फिर दोनों पैरों को मिलाकर एक साथ करें।

४. घुटने एवं नितम्बों के लिए : (क) दायें पैर को मोड़कर बायें जंघे पर रखें, बायें हाथ से दायें पंजे को पकड़ें तथा दायें हाथ को दायें घुटने पर रखें। अब दायें हाथ को दायें घुटने के नीचे लगाते हुए घुटने को ऊपर उठाकर छाती से लगायें तथा घुटने को दबाते हुए जमीन पर टिका दें। इसी प्रकार इस अभ्यास को विपरीत बायें पैर को मोड़कर दायें जंघे पर रखकर पूर्ववत् करें। अन्त में दोनों हाथों से पंजों को पकड़कर घुटनों को भूमि पर स्पर्श करायें और ऊपर उठायें। इस प्रकार कई बार इसकी आवृत्ति करें।

(ख) तितली आसन (बटर फ्लाई) : दोनों पैर घुटनों से मोड़कर पैर के तलवों को आपस में सटाकर जाँघों के जोड़ के पास लायें तथा तितली के पंखों की तरह घुटनों को ऊपर–नीचे चलाते हुए दो मिनट तक क्रिया को दोहरायें। नितम्ब के जोड़ को स्वस्थ करने के लिए तथा वहाँ बढ़ी हुई चर्बी को कम करने के लिए यह अभ्यास उत्तम है। इससे पद्मासन करने में भी सुगमता होगी।

५. घुटनों के लिए : (क) पैरों को सीधा रखते हुए दोनों हाथों को कमर के दोनों साइड में रखें। घुटनों की कपाली को दबाते एवं छोड़ते हुए आकुंचन एवं प्रसारण की क्रिया करें। इसके बाद दोनों हाथों की अंगुलियों को एक दूसरे में डालते हुए घुटने के नीचे जंघा को पकड़ें। फिर पैर को मोड़ते हुए नितम्ब के पास लायें और साइकिलिंग जैसी क्रिया करते हुए पैर से सामने की ओर से शून्य बनायें। इसी तरह विपरीत दिशा के पैर से भी करें।
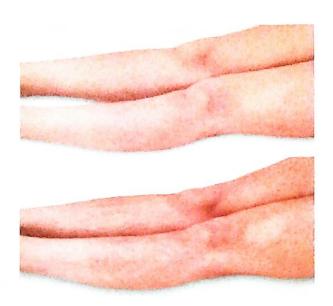
(ख) सीधे खड़े होकर दोनों एड़ियों को एक साथ सटाते हुए, घुटनों को भी सटायें। दोनों हथेलियों को घुटनों पर रखकर पहले बायीं ओर फिर दायीं ओर वृत्ताकार पथ पर घुमायें। इस क्रिया को पाँच-सात बार दुहरायें। यह व्यायाम घुटनों के लिए लाभकारी है।
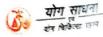
६. पेट तथा कमर के लिए *(Grinding)*: (क) दोनों हाथों की अंगुलियों को एक दूसरे में डालते हुए सामने दोनों पैरों के ऊपर रखें। दायीं ओर से बायीं ओर हाथों को इस तरह से घुमायें कि कमर आगे झुकाते हुए, पैर की अंगुलियों से हाथ छूते हुए वृत्ताकार में घूमें, जब जंघाओं पर हाथ आयें तो कमर को पीछे की ओर झुकायें। पैरों को स्थिर रखें। इसी तरह दूसरी ओर से इस क्रिया को दोहरायें।

(ख) दोनों पैरों को थोड़ा खोलकर सामने फैलायें। दोनों हाथों को कन्धों के समकक्ष सामने उठाकर रखें। फिर दायें हाथ से बायें पैर के अंगूठे को पकड़ें एवं बायें हाथ को पीछे की ओर घुमाते हुए पर्वताकार में ऊपर सीधा रखें, गर्दन को भी बायीं ओर घुमाते हुए पीछे की ओर देखें। इसी प्रकार दूसरी ओर से करें। इन दोनों अभ्यासों से कमर दर्द दूर होता है और पेट स्वस्थ होता है तथा कमर की बढ़ी हुई चर्बी दूर होती है; परन्तु जिनको अत्यधिक कमर-दर्द है, वे इन अभ्यासों को न करें।
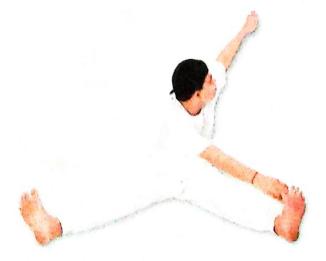
७. पीठ के लिए : दोनों हाथों से एक दूसरे हाथ की कलाई पकड़कर उपर उठाते हुए सिर के पीछे ले जायें। श्वास अन्दर भरते हुए दायें हाथ से बायें हाथ को दायीं ओर सिर के पीछे से खींचे। गर्दन एवं सिर स्थिर रहे। फिर श्वास छोड़ते हुए हाथों को ऊपर ले जायें। इसी प्रकार दूसरी ओर से इस क्रिया को करें।

८. हाथ की अंगुलियों के लिए : (क) दोनों हाथों को सामने फैलाकर पंजे नीचे की ओर रखते हुए कन्धों के समकक्ष सीधा रखें। फिर अंगुलियों के पोरों को बलपूर्वक धीरे-धीरे मोड़ें और सीधा करें। (ख) इसके पश्चात् अंगूठे को मोड़कर अंगुलियों से दबाते हुए मुक्का जैसी आकृति बनायें फिर धीरे-धीरे खोलें। इस प्रकार दस-बारह बार करें।

९. पूरे हाथ, सर्वाइकल स्पोण्डोलाइटिस तथा फ्रोजन सोल्डर के लिए: अंगूठे को मोड़कर अंगुलियों से दबाते हुए दोनों हाथों की मुट्ठियाँ बन्द करके सामने कन्धे के समानान्तर सीधा रखें तथा मुट्ठियों को वृत्ताकार में क्रमशः दोनों ओर घुमायें। कोहनियाँ सीधी रहनी चाहिए।

१०. कोहनी के लिए: (क) दोनों हाथों की हथेलियों को ऊपर की ओर करते हुए हाथों को सामने फैलायें। अब कोहनी को मोड़ते हुए अंगुलियों से कन्धों को स्पर्श करें। फिर धीरे-धीरे सीधा करें। (ख) इसी अभ्यास को पार्श्व भागों में (दोनों साइड) हाथों को दोनों ओर कन्धों के समानान्तर फैलाकर भी करें।

११. हार्ट, सर्वाइकल एवं सोल्डर दर्द के लिए:

(क) दोनों हाथों को मोड़कर कन्धे पर रखें। कोहनियाँ कन्धे के समकक्ष सामने रहें। फिर दोनों कोहनियों को छाती के सामने मिलाते हुए वृत्ताकार में घुमाते हुए, बड़ा शून्य बनायें। यह क्रिया विपरीत दिशा से भी करें।

(ख) दोनों हाथों की मुट्ठी बन्द करके छाती के पास इस प्रकार रखें कि अंगुलियों के पीछेवाले भाग आपस में लगे हुए हों। अब श्वास छाती में भरके हाथों को धीरे-धीरे सामने खोलें, परन्तु यह ध्यान रहे कि अंगुलियाँ आपस में ठीक से लगी रहें, पृथक् न हों। हाथों के सामने सीधा होने के पश्चात् श्वास को बाहर निकालते हुए हाथों को छाती के पास ले आयें। इस प्रकार कई बार इसको दोहरायें।

१२. गर्दन के लिए:

(क) सीधे बैठकर गर्दन को दायीं ओर घुमाते हुए पहले दायें कन्धे से लगायें। इसी तरह बायें कन्धे से छुएँ। इसके पश्चात् गर्दन को आगे की ओर झुकाते हुए ठोड़ी को छाती से लगायें, फिर धीरे-धीरे पीछे की ओर यथाशक्ति झुकायें। अन्त में गर्दन को वृत्ताकार में दोनों दिशाओं में क्रमशः घुमाना चाहिए।

(ख) दायें हाथ की हथेली को दायीं ओर कान के ऊपर सिर पर रखकर हाथ से सिर को दबायें तथा सिर से हाथ की ओर दबाव डालें। इस प्रकार हाथ से सिर को तथा सिर से हाथ को एक दूसरे के विरुद्ध दबाने से गर्दन में एक कम्पन होता है। इस प्रकार चार-पाँच बार दबाव डालकर बायीं ओर से इस क्रिया को करना चाहिए।

(ग) अन्त में दोनों हाथ की अंगुलियों को एक दूसरे में डालते हुए (इण्टरलॉक करते हुए) हाथों से सिर को तथा सिर से हाथों को दबाना चाहिए। ऐसा करते हुए सिर तथा गर्दन सीधी रहेगी। विरुद्ध दबाव से मात्र एक कम्पन होगा, जो कि गर्दन के आरोग्य के लिए तथा वहाँ पर रक्त-संचार को सुचारु करने के लिए आवश्यक है।

१३. आँखों के लिए: गर्दन को सीधा रखकर आँखों की पुतलियों को पहले ऊपर-नीचे और फिर दायें-बायें घुमायें। तत्पश्चात् दायें-बायें गोलाई में घुमायें।

आसनोपयोगी नियम

१. समय : आसन प्रातः-सायं दोनों समय कर सकते हैं। यदि दोनों समय नहीं कर सकते, तो प्रातःकाल का समय उत्तम है। प्रातःकाल मन शान्त रहता है। प्रातः शौचादि से निवृत्त होकर खाली पेट तथा दोपहर के भोजन के लगभग ५-६ घण्टे बाद सायंकाल आसन कर सकते हैं। आसन करने से पहले शौच आदि से निवृत्त होना चाहिए। यदि कब्ज रहता है तो प्रातःकाल ताँबे या चाँदी के बर्तन में रखे हुए पानी को पीना चाहिए। उसके पश्चात् थोड़ा भ्रमण करें। इससे पेट साफ हो जाता है। अधिक कब्ज हो, तो त्रिफला चूर्ण चूर्ण सोते समय गर्म पानी से लें।

२. स्थान : स्वच्छ, शान्त एवं एकान्त स्थान आसनों के लिए उत्तम है। यदि वृक्षों की हरियाली के समीप, बाग, तालाब या नदी का किनारा हो, तो सर्वोत्तम है। खुले वातावरण एवं वृक्षों के नजदीक ऑक्सीजन पर्याप्त मात्रा में होती है, जो स्वास्थ्य के लिए उत्तम है। यदि घर में आसन-प्राणायाम करें, तो घी का दीपक या गुग्गुल आदि जलाकर उस स्थान को सुगन्धित करना चाहिए।

३. वेशभूषा : आसन करते समय शरीर पर वस्त्र कम और सुविधाजनक होने चाहिए। पुरुष हाफ पैण्ट और बनियान का उपयोग कर सकते हैं। माताएँ और बहनें सलवार, ब्लाउज आदि पहनकर आसन, प्राणायाम आदि का अभ्यास करें।

४. आसन एवं मात्रा : भूमि पर बिछाने के लिए मुलायम दरी या कम्बल का प्रयोग करना उचित है। खुली जमीन पर आसन न करें। अपने सामर्थ्य के अनुसार व्यायाम करना चाहिए। आसनों का पूर्ण अभ्यास एक घण्टे में, मध्यम अभ्यास ३० मिनट में तथा संक्षिप्त अभ्यास १५ मिनट में होता है। आधा घण्टा तो प्रत्येक व्यक्ति को योगासन करना ही चाहिए।

५. आयु : मन एकाग्र कर प्रसन्नता एवं उत्साह के साथ अपनी आयु, शारीरिक शक्ति और क्षमता का पूरा ध्यान रखते हुए यथाशक्ति अभ्यास करना चाहिए। तभी वह योग से वास्तविक लाभ उठा सकेगा। वृद्ध एवं दुर्बल व्यक्तियों को आसन एवं प्राणायाम अल्प मात्रा में करने चाहिए। दस वर्ष से अधिक आयु के बालक सभी यौगिक अभ्यास कर सकते हैं। गर्भवती महिलाएँ कठिन आसनादि न करें। वे केवल शनैः-शनै दीर्घ श्वसन, प्रणव-नाद एवं गायत्री आदि पवित्र मन्त्रों द्वारा ध्यान करें।

६. अवस्था एवं सावधानियाँ : सभी अवस्थाओं में आसन एवं प्राणायम किये जा सकते हैं। इन क्रियाओं से स्वस्थ व्यक्ति का स्वास्थ्य उत्तम बनता है। वह रोगी नहीं होता और रोगी व्यक्ति स्वस्थ होता है। परन्तु फिर भी कुछ ऐसे आसन हैं, जिनको रोगी व्यक्ति को नहीं करना चाहिए यथा जिनके कान बहते हों, नेत्रों में लाली हो,

स्नायु एवं हृदय दुर्बल हो, उनको शीर्षासन नहीं करना चाहिए। हृदय-दौर्बल्यवाले को अधिक भारी आसन जैसे पूर्ण शलभासन, धनुरासन आदि नहीं करना चाहिए। अण्डवृद्धिवालों को भी वे आसन नहीं करने चाहिए, जिनसे नाभि के नीचे वाले हिस्से पर अधिक दबाव पड़ता है। उच्च रक्तचापवाले रोगियों को सिर के बल किये जाने वाले शीर्षासन आदि तथा महिलाओं को ऋतुकाल में ४-५ दिन आसनों का अभ्यास नहीं करना चाहिए। जिनको कमर और गर्दन में दर्द रहता हो, वे आगे झुकनेवाले आसन न करें।

७. भोजन : भोजन आसन के लगभग आधे घण्टे पश्चात् करना चाहिए। भोजन में सात्त्विक पदार्थ हों। तले हुए गरिष्ठ पदार्थों के सेवन से जठर विकृत हो जाता है। आसन के बाद चाय नहीं पीनी चाहिए। एक बार चाय पीने से यकृत् आदि कोमल ग्रन्थियों के लगभग ५० सेल्स निष्क्रिय हो जाते हैं। इससे आप स्वयं अनुमान कर सकते हैं कि चाय से कितनी हानि है। यह भी स्वास्थ्य की एक भयंकर शत्रु है, जो शरीर-रूपी पावन मन्दिर को विकृत कर देती है। इसमें एक प्रकार का नशा भी होता है, जिसका व्यक्ति अभ्यस्त हो जाता है। जठराग्नि को मन्द करने एवं अम्लपित्त, गैस, कब्जादि रोगों को उत्पन्न करने में चाय का सबसे अधिक योगदान होता है। यकृत् को विकृत करने में भी चाय और अंग्रेजी दवा दोनों की हानिकारक भूमिका होती है।

८. श्वास-प्रश्वास का नियम : आसन करते समय सामान्य नियम है कि आगे की ओर झुकते समय श्वास बाहर निकालते हैं तथा पीछे की ओर झुकते समय श्वास अन्दर भरकर रखते हैं। श्वास नासिका से ही लेना और छोड़ना चाहिए, मुख से नहीं; क्योंकि नाक से लिया हुआ श्वास फिल्टर होकर अन्दर जाता है।

९. दृष्टि : आँखें बन्द करके योगासन करने से मन की एकाग्रता बढ़ती है, जिससे मानसिक तनाव एवं चंचलता दूर होती है। सामान्यतः आसन एवं प्राणायाम आँखें खोलकर भी कर सकते हैं।

१०. क्रम : कुछ आसन एक पार्श्व करने होते हैं। यदि कोई आसन दायीं करवट करें तो उसे बायीं करवट भी करें। इसके अतिरिक्त आसनों का एक ऐसा क्रम निश्चित कर लें कि प्रत्येक अनुवर्ती आसन से विघटित दिशा में भी पेशियों और सन्धियों का व्यायाम हो जाये। उदाहरणतः सर्वांगासन के उपरान्त मत्स्यासन, मण्डूकासन के बाद उष्ट्रासन किया जाये। नवाभ्यासी शुरू में २-४ दिन मांसपेशियों और सन्धियों में पीड़ा अनुभव करेंगे। अभ्यास जारी रखें। पीड़ा स्वत शांत हो जायेगी। लेटी अवस्था में किये गये आसनों के बाद जब भी उठा जाये, बाईं करवट की ओर झुकते हुए उठना चाहिए। अभ्यास के अन्त में शवासन ८-१० मिनट के लिए अवश्य करें, ताकिअंग-प्रत्यंग शिथिल हो जायें।

११. विश्राम : आसन करते हुए जब-जब थकान हो, तब-तब शवासन या मकरासन में विश्राम करना चाहिए। थक जाने पर बीच में भी विश्राम कर सकते हैं।

१२. गुरु: गुरूपदिष्टमार्गेण योगमेव समभ्यसेत्।

योग की सिद्धि गुरुकृपा और गुरु-उपदिष्ट मार्ग से ही होती है। इसलिए योगासन, प्राणायाम, ध्यान आदि का अभ्यास प्रारम्भ में गुरु के सान्निध्य में ही करना चाहिए।

१३. यम-नियम: योगाभ्यासियों को यम-नियम का पालन पूरी शक्ति के साथ करना चाहिए। बिना यम-नियमों के पालन के कोई भी व्यक्ति योगी नहीं हो सकता।

१४. शरीर का तापमान: शरीर का तापमान अधिक उष्ण होने या ज्वर होने की स्थिति में योगाभ्यास करने से तापमान बढ़ जाये तो चन्द्रस्वर यानि बाईं नासिका से श्वास अन्दर खींचकर (पूरक कर), सूर्य-स्वर, यानि दायीं नासिका से रेचक (श्वास बाहर निकालना) करने की विधि बार-बार करके तापमान सामान्य कर लेना चाहिए।

१५. पेट की सफाई: पेट की ठीक से सफाई न होती हो, कब्ज और अपच की शिकायत रहती हो तो कुछ दिन प्रारम्भ में कोई सौम्य रेचक हरड़ या त्रिफलादि चूर्ण रात को सोते समय ले लें। अन्यथा पेट साफ न होने की स्थिति में आँख, मुख, सिर में विकार एवं स्नायु-मण्डल में कमजोरी होने की शिकायत हो सकती है। अतः पेट का साफ होना, कब्ज-रहित होना, अपच न होना, रात को समय से सोकर पूरी नींद लेना और उचित आहार-विहार करना बहुत ही आवश्यक है।

१६. कठिन आसन: जिन व्यक्तियों का कभी अस्थिभंग हुआ हो, वे कठिन आसनों का अभ्यास कभी नहीं करें, अन्यथा उसी स्थान पर हड्डी दोबारा टूट सकती है।

१७. पसीना आने पर: अभ्यास के दौरान पसीना आ जाये तो तौलिये से पोंछ लें, इससे चुस्ती आ जाती है, चर्म स्वस्थ रहता है और रोगाणु चर्म-मार्ग से शरीर में प्रवेश नहीं कर सकेंगे। योगासनों का अभ्यास यथासम्भव स्नानादि से निवृत्त होकर करना चाहिए। अभ्यास के १५-२० मिनट बाद भी शरीर का तापमान सामान्य होने पर स्नान कर सकते हैं।

उदर रोग, मधुमेह, मोटापा के लिए मुख्य आसन

यहाँ जिन आसनों का वर्णन करेंगे - वे सभी आसन पेट के लिए विशेष रूप से उपयोगी होंगे। पेट के साथ-साथ इन आसनों के दूसरे लाभ भी यथास्थान लिखते रहेंगे। पेट के स्वास्थ्य पर हमारे सम्पूर्ण शरीर का स्वास्थ्य निर्भर रहता है। पेट शब्द से सम्पूर्ण पाचन-तन्त्र का ग्रहण होता है, जिसमें आमाशय, यकृत्, प्लीहा, पित्ताशय, अग्न्याशय, अन्त्र (आँत) इन सबका समूह है। हमने पहले भी लिखा है कि इस पाचन-तन्त्र से आहार का पाचन होकर रस एवं रक्त की उत्पत्ति होती है और फिर उसी रक्त से सम्पूर्ण शरीर का निर्माण होता है। इसलिए ये आसन व्यक्ति को पूर्ण शारीरिक लाभ प्रदान करेंगे। इसी पाचन-तन्त्र पर हृदय का स्वास्थ्य भी निर्भर रहता है। हृदयरोग के अधिकांश व्यक्तियों को उदर-गैस, अपच आदि बीमारियाँ होती हैं, गैस बनकर हृदय पर असर करती है, गैस-वातादि के कुप्रभाव से कई बार हृदय की धड़कन बढ़ने लगती है। इसलिए ये आसन हृदयरोगियों के लिए भी उत्तम होंगे।

सर्वांगासन

सर्वांगासन

विधि:

■ पीठ के बल सीधा लेट जायें। पैर मिले हुए, हाथों को दोनों ओर बगल में सटाकर हथेलियाँ जमीन की ओर करके रखें।

■ श्वास अन्दर भरकर पैरों को धीरे-धीरे ३० डिग्री, फिर ६० डिग्री और अन्त में ९० डिग्री तक उठायें। पैरों को उठाते समय हाथों से सहायता ले सकते हैं। ९० डिग्री पर यदि सीधा न हों तो १२० डिग्री पर पैर ले जाकर एवं हाथों को उठाकर कमर के पीछे लगायें। कोहनियाँ भूमि पर टिकी हुई हों और पैरों को मिलाकर सीधा रखें। पंजे ऊपर की ओर तने हुए एवं आँखें बन्द हों अथवा पैर के अंगूठों पर दृष्टि रखें। दो मिनट से शुरू करके धीरे-धीरे यह आसन आधे घण्टे तक किया जा सकता है।

■ वापस आते समय पैरों को सीधा रखते हुए पीछे की ओर थोड़ा झुकायें। दोनों हाथों को कमर से हटाकर भूमि पर सीधा कर दें। अब हथेलियों से भूमि को दबाते हुए जिस क्रम से उठे थे, उसी क्रम से धीरे-धीरे पहले पीठ और फिर पैरों को भूमि पर सीधा करें। जितने समय तक सर्वांगासन किया जाये, लगभग उतने ही समय तक शवासन में विश्राम करें। इस आसन का प्रतियोगी या पूरक आसन मत्स्यासन है। अतः शवासन में विश्राम से पूर्व मत्स्यासन करने से इस आसन से अधिक लाभ होता है।
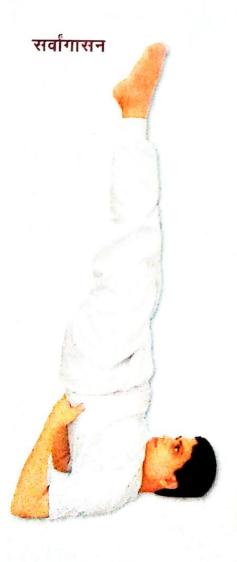
लाभ :

- थॉयरायड को सक्रिय एवं स्वस्थ बनाता है। इसलिए मोटापा, दुर्बलता, कद-वृद्धि में कमी एवं थकान आदि विकार दूर होते हैं। एड्रिनल, शुक्रग्रन्थि एवं डिम्बग्रन्थियों को सबल बनाता है।
- अन्य सभी लाभ शीर्षासन के समान हैं। परन्तु इस आसन में यह विशेषता है कि जिनके लिए शीर्षासन निषिद्ध है, वे भी इसको कर सकते हैं। दमा की २-३ अवस्थाओं के लिए भी यह आसन उपयोगी पाया गया है; क्योंकि इस आसन में कन्धे स्थिर होते हैं। उदर के अंगों, अन्त्र इत्यादि का भार मध्यच्छदा पेशी पर पड़ने से तथा श्वास-प्रश्वास में भाग लेने से डायफ्राम की टोन में सुधार आता है।
- इस आसन से थॉयरायड एवं पिच्युटरी ग्लैण्ड के मुख्य रूप से क्रियाशील होने से यह कद-वृद्धि में विशेष उपयोगी है।

उत्तानपादासन

विधि :

- पीठ के बल लेट जायें। हथेलियाँ भूमि की ओर, पैर सीधे, पंजे मिले हुए हों।
- अब श्वास अन्दर भरकर पैरों को १ फुट तक (करीब ३० डिग्री तक) शनैः-शनैः ऊपर उठायें। कुछ समय तक इसी स्थिति में बने रहें।
- वापस आते समय धीरे-धीरे पैरों को नीचे भूमि पर टिकायें, झटके के साथ नहीं। कुछ विश्राम कर फिर यही क्रिया करें। इसे ३ से ६ बार करना चाहिए।
- जिनको कमर में अधिक दर्द रहता हो, वे एक-एक पैर से क्रमशः इसका अभ्यास करें।

लाभ :

- यह आसन आँतों को सबल एवं नीरोग बनाता है तथा कब्ज, गैस, मोटापा आदि को दूर कर जठराग्नि को प्रदीप्त करता है।

उत्तानपादासन

- नाभि का टलना, हृदयरोग, पेटदर्द एवं श्वासरोग में भी उपयोगी है।
- एक-एक पैर से क्रमशः करने पर कमर दर्द में विशेष लाभप्रद है।

हलासन

विधि :

- पीठ के बल लेट जायें, अब श्वास अन्दर भरते हुए धीरे-धीरे पैरों को उठायें। पहले ३० डिग्री, फिर ६० डिग्री, फिर ९० डिग्री तक उठाने के बाद पैरों को सिर के पीछे की ओर पीठ को भी उपर उठाते हुए श्वास बाहर निकालते हुए ले जायें।
- पैरों को सिर के पीछे भूमि पर टिका दें। श्वास की गति सामान्य रहेगी। प्रारम्भ में हाथों को सुविधा की दृष्टि से कमर के पीछे लगा सकते हैं। पूर्ण स्थिति में हाथ भूमि पर ही रखें। इस स्थिति में ३० सेकण्ड रहें।
- वापस आते समय जिस क्रम से ऊपर आये थे, उसी क्रम से भूमि को हथेलियों से दबाते हुए पैरों को घुटनों से सीधा रखते हुए भूमि पर टिकायें।

हलासन

लाभ :

- मेरुदण्ड को स्वस्थ एवं लचीला बनाकर पृष्ठभाग की मांसपेशियों को भी विस्तृत एवं नीरोग बनाता है।
- थॉयरायड ग्रन्थि को चुस्त करके मोटापा, बौनापन एवं दुर्बलता आदि को दूर करता है।
- अजीर्ण, मन्दाग्नि, गैस, कब्ज, तिल्ली एवं यकृत्-वृद्धि तथा हृदयरोग में लाभकारी है।
- अग्न्याशय को सक्रिय कर डायबिटीज को दूर करता है।
- कष्टार्तव आदि स्त्रीरोगों में भी यह आसन उपयोगी है।

सावधानियाँ :

- अधिक बढ़ी हुई तिल्ली एवं यकृत् में यह आसन वर्जित है।
- उच्च रक्तचाप, सर्वाइकल आदि मेरुदण्ड के रोगी भी इसे नहीं करें।
- स्लिप डिस्क तथा मेरुदण्ड में टी.बी. आदि विकार होने पर भी यह आसन न करें।

कर्ण-पीडासन

विधि :

हलासन की तरह पैरों को सिर के पीछे टिकाकर दोनों घुटनों को झुकाकर कानों से लगा दें। शेष विधि हलासन के समान है।

लाभ :

सभी लाभ हलासन के समान हैं। कर्णरोगों में विशेष लाभकारी होने से इस आसन का नाम कर्ण-पीडासन है।

कर्ण-पीडासन

नौकासन

विधि :

- दोनों हाथों को जंघाओं के ऊपर रखकर सीधे लेटें। अब श्वास अन्दर भरते हुए पहले सिर एवं कन्धों को ऊपर उठायें, फिर पैरों को भी ऊपर उठायें। हाथ, पैर एवं सिर समानान्तर नाव की तरह उठे हुए हों।
- इस स्थिति में कुछ समय रुककर धीरे-धीरे हाथ-पैर एवं सिर को भूमि पर श्वास बाहर निकालते हुए ले आयें। इस प्रकार ३ से ६ बार तक आवृत्ति कर सकते हैं। इस आसन का प्रतियोगी आसन धनुरासन है। यानि नौकासन के बाद धनुरासन करना चाहिए।

नौकासन

लाभ :

- इसके भी लाभ उत्तानपादासन के समान हैं।
- हृदय एवं फेफड़े भी प्राणवायु के प्रवेश से सबल बनते हैं।
- अन्त्र (आँत), आमाशय, अग्न्याशय एवं यकृत् आदि की स्वस्थता के लिए उत्तम है।

पवन-मुक्तासन

विधि :

- सीधे लेटकर दायें पैर के घुटने को छाती पर रखें।
- दोनों हाथों को, अंगुलियाँ एक दूसरे में डालते हुए घुटने पर रखें, श्वास बाहर निकालते हुए घुटने को दबाकर छाती से लगायें एवं सिर को उठाते हुए घुटने से नासिका का स्पर्श करें। कुछ देर करीब १० से ३० सेकण्ड तक श्वास को बाहर रोकते हुए इस स्थिति में रहकर फिर पैर को सीधा कर दें। इसे २ से ४ बार तक करें।
- इसी तरह दूसरे पैर से करें। अन्त में दोनों पैरों से एक साथ इस अभ्यास को करना चाहिए। यह एक चक्र पूरा हुआ। इस प्रकार ३ से ४ चक्र कर सकते हैं।
- दोनों पैरों को पकड़ते हुए कमर की मालिश भी करें। शरीर को आगे-पीछे, दायें-बायें लुढ़काना भी चाहिए।

पवन-मुक्तासन (प्रथम स्थिति)

पवन-मुक्तासन (द्वितीय स्थिति)

लाभ :
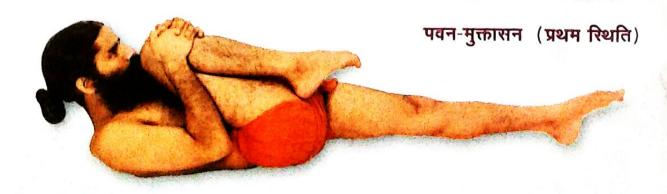
- यह आसन यथानाम तथा गुण है। उदरगत वायु-विकार के लिए यह बहुत ही उत्तम है।
- स्त्रीरोग अल्पार्त्तव, कष्टार्त्तव एवं गर्भाशय-सम्बन्धी रोगों के लिए लाभप्रद है।
- अम्लपित्त, हृदयरोग, गठिया एवं कटिपीड़ा में हितकारी है।
- पेट की बढ़ी हुई चर्बी को कम करता है।
- यदि कमर में अधिक दर्द हो तो सिर उठाकर घुटने से नासिका न लगायें। केवल पैरों को दबाकर छाती से स्पर्श करें। ऐसा करने से स्लिप डिस्क, सियाटिका एवं कमर-दर्द में पर्याप्त लाभ होता है।

कन्धरासन

विधि :

- सीधे लेटकर दोनों घुटनों को मोड़कर पैरों को नितम्ब के समीप रखें।

कन्धरासन
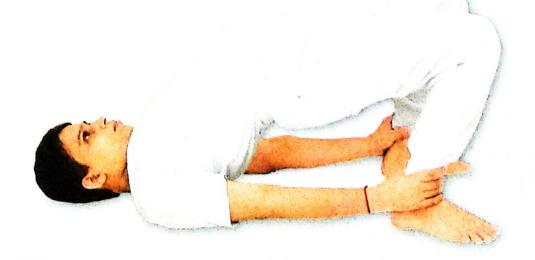
- हाथों से पैर की एड़ी के उपरी हिस्से को पकड़ें।
- श्वास अन्दर भरकर कमर एवं नितम्बों को उठायें। कन्धे, सिर एवं एड़ियाँ भूमि पर टिके रहें। इस स्थिति में १५ से २० सेकण्ड तक रुकें।
- वापस आते समय श्वास छोड़ते हुए धीरे-धीरे कमर को भूमि पर टिकायें। इस प्रकार ३ से ४ आवृत्ति करें।

लाभ :

- सूर्यकेन्द्र (नाभि) को केन्द्रित रखने के लिए सर्वोत्तम आसन है। पेट-दर्द, कमर-दर्द में उपयोगी है।
- गर्भाशय के लिए विशेष लाभप्रद आसन है। वन्ध्यात्व, मासिक विकृति, श्वेत प्रदर, रक्त प्रदर एवं पुरुषों के धातुरोगों को दूर करता है।

पादांगुष्ठनासा-स्पर्शासन

विधि :

- सीधे लेटकर दायें पैर को मोड़ें तथा दोनों हाथों से पैर के पंजे को पकड़कर श्वास को बाहर निकालते हुए पैर को खींचें तथा सिर उठाकर पैर के अंगुष्ठ से नासिका का स्पर्श करें।

पादांगुष्ठनासा-स्पर्शासन (प्रथम स्थिति)

- इसी प्रकार बायें पैर से इस आसन का अभ्यास करें और अन्त में दोनों पैरों से एक साथ यह आसन करें।

लाभ :

- नाभि को ठीक करने के लिए यह अभ्यास महत्त्वपूर्ण है। नाभि के ठीक होने से गैस, पेट-दर्द, कब्ज, अतिसार, दुर्बलता एवं आलस्य ये स्वतः ही दूर हो जाते हैं।
- आमाशय, अग्न्याशय एवं आँतों के लिए हितकारी है।

पादांगुष्ठनासा-स्पर्शासन (द्वितीय स्थिति)
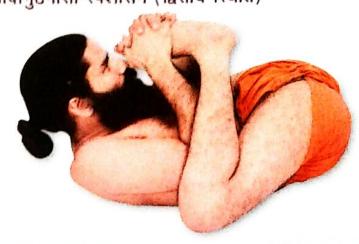
दीर्घनौकासन

विधि :

- शवासन में लेटकर दोनों हाथों को सिर के पीछे मिलाते हुए सीधा करें।
- श्वास अन्दर भरकर पैर, सिर एवं हाथ तीनों धीरे-धीरे करीब एक फुट ऊपर उठायें, नितम्ब एवं पीठ का निचला भाग भूमि पर लगा रहे। दृष्टि सीने पर रखें। वापस आते समय श्वास छोड़ते हुए धीरे-धीरे हाथ, पैर एवं सिर को भूमि पर टिकायें।

दीर्घनौकासन
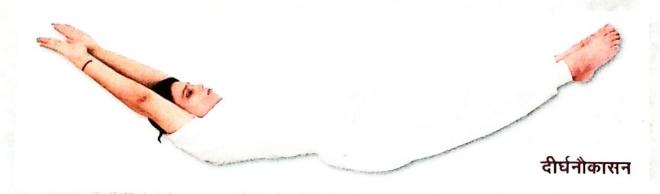
लाभ :

- नौकासन के समान ही पेट तथा पीठ के लिए लाभप्रद है।
- हृदय को मजबूत बनानेवाला श्रेष्ठ आसन होने से इसे हृदयस्तम्भासन भी कहते हैं।
- गर्भावस्था को छोड़कर स्त्रियों को यह आसन अवश्य करना चाहिए। यह उनकी देह को सुडौल एवं फुर्तीला बनानेवाला आसन है।

पृष्ठतानासन

विधि :

- पेट के बल लेट जायें। हाथों को सामने फैलाकर हथेलियाँ जमीन की ओर करते हुए एक दूसरे के ऊपर रखें। पैर सीधे तथा पंजे पीछे की ओर तथा तने हुए हों। माथा दोनों हाथों के बीच टिका हुआ हो।
- श्वास अन्दर भरकर हाथों को आगे की ओर खींचें तथा पैरों को पीछे की ओर तानें। शरीर को स्थिर रखते हुए ही यह क्रिया हो। पृष्ठभाग में कम्पन होगा। श्वास को बाहर छोड़ते हुए शरीर को ढीला छोड़ दें। इस प्रकार तीन-चार आवृत्ति करें।

पृष्ठतानासन

लाभ :

पृष्ठभाग की सम्पूर्ण नस-नाड़ियों को आरोग्य मिलता है।

पद्मासन

विधि :

- दण्डासन में बैठकर दायें पैर को बायें पैर के जंघे पर रखें। इसी प्रकार बायें पैर को दाहिने जंघे पर स्थिर करें। मेरुदण्ड सीधा रहे। सुविधानुसार बायें पैर को दायें पैर के जंघे पर भी रखकर दायें पैर को बायें जंघे पर स्थिर कर सकते हैं।
- दोनों हाथों की अंजलि बनाकर (बायाँ हाथ नीचे, दायाँ हाथ ऊपर) अंक (गोद) में रखें। नासिकाग्र अथवा किसी एक स्थान पर मन को केन्द्रित करके इष्टदेव परमात्मा का ध्यान करें।
- प्रारम्भ में एक-दो मिनट तक करें। फिर धीरे-धीरे समय बढ़ायें।

लाभ:

- ध्यान के लिए उत्तम आसन है। मन की एकाग्रता एवं प्राणोत्थान में सहायक है।
- जठराग्नि को तीव्र करता है। वातव्याधि में लाभदायक है।

बद्धपद्मासन

बद्धपद्मासन

विधि:
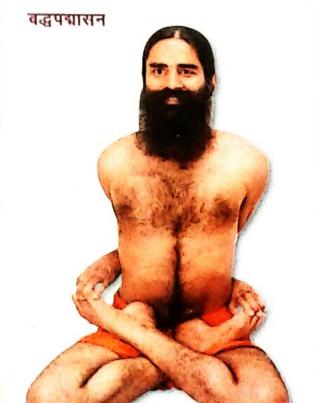
- पद्मासन में बैठकर बायें हाथ को पीठ के पीछे से घुमाकर बायें पैर का अंगूठा पकड़ें, इसी प्रकार दायें हाथ को पीछे से लेते हुए दायें पैर का अंगूठा पकड़ें।
- कमर एवं रीढ़ की हड्डी सीधी रहे। आँखें बन्द रखकर यथाभिमत मन को एकाग्र करें।

लाभ:

- स्त्रियों एवं पुरुषों की छाती का विकास कर सुन्दर बनाता है।
- हाथ, कन्धे एवं सम्पूर्ण पृष्ठभाग के लिए उपयोगी है।

योगमुद्रासन (१)

विधि:

- पद्मासन में बैठकर दायें हाथ की हथेली को पहले नाभि पर रखें और बायें हाथ की हथेली दायें हाथ पर रखें। फिर श्वास बाहर निकालते हुए आगे झुककर ठोड़ी भूमि पर टिकायें। दृष्टि सामने रहे।
- श्वास अन्दर भरते हुए वापस आयें। इस तरह ४-५ आवृत्ति करें।

योगमुद्रासन (१)

लाभ:

- पेट के लिए उत्तम अभ्यास है। जठराग्नि को प्रदीप्त करता है तथा गैस, अपचन, कब्ज आदि की निवृत्ति करता है।
- पेन्क्रियाज को क्रियाशील करके मधुमेह को नियन्त्रित करने में अत्यधिक लाभकारी है।

योगमुद्रासन (२)

विधि:

- पद्मासन में बैठकर दोनों हाथों को पीठ के पीछे ले जाकर दायें हाथ से बायें हाथ की कलाई को पकड़ें।
- श्वास बाहर छोड़ते हुए भूमि पर ठोड़ी स्पर्श करें, दृष्टि सामने रहे. ठोड़ी यदि भूमि पर नहीं लगती है, तो यथाशक्ति सामने झुकें।

योगमुद्रासन (२)

लाभ: पूर्ववत्।

मत्स्यासन

विधि:

- पद्मासन की स्थिति में बैठकर हाथों से सहारा लेते हुए पीछे कोहनियाँ टिकाकर लेट जायें।
- हथेलियों को कन्धे से पीछे टेककर उनसे सहारा लेते हुए ग्रीवा को जितना पीछे मोड़ सकते हैं, मोड़ें। पीठ और छाती ऊपर उठी हुई तथा घुटने भूमि पर टिके हुए हों।
- हाथों से पैर के अंगूठे पकड़कर कोहनियों को भूमि पर टिकायें। श्वास अन्दर भरकर रखें।

मत्स्यासन
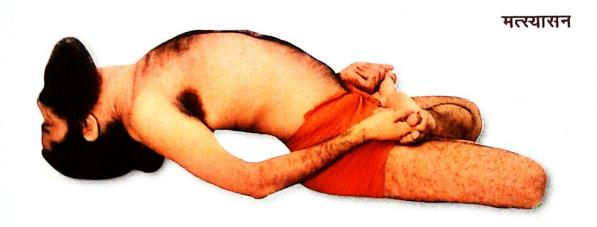
- आसन छोड़ते समय जिस स्थिति में शुरू किया था, उसी स्थिति में वापस आयें या कन्धे एवं सिर को भूमि पर टिकाते हुए पैरों को सीधा करके शवासन में लेट जायें।
- यह सर्वांगासन का प्रतियोगी आसन है। अतः, इसे सर्वांगासन के बाद करना चाहिए।

लाभ:

- पेट के लिए उत्तम आसन है। आँतों को सक्रिय करके कब्ज की निवृत्ति करता है।
- थॉयरायड, पैराथॉयरायड एवं एड्रिनल को स्वस्थ बनाता है।
- सर्वाइकल पेन या ग्रीवा की पीछे की हड्डी बढ़ी हुई होने पर लाभदायक है।
- नाभि टलना दूर होता है। फेफड़ों के रोगों– दमा-श्वास आदि की निवृत्ति करता है।

वज्रासन

विधि:

- दोनों पैरों को मोड़कर नितम्ब के नीचे इस प्रकार रखें कि एड़ियाँ बाहर की ओर निकली हुई तथा नितम्ब से लगे हुए हों।
- इस स्थिति में पैरों के अंगूठे एक दूसरे से लगे हुए होंगे। कमर, ग्रीवा एवं सिर सीधे रहें। घुटने मिले हुए हाथों को घुटनों पर रखें।

वज्रासन (पार्श्व चित्र)

वज्रासन (पृष्ठ चित्र)

लाभ :

- यह ध्यानात्मक आसन है, जो मन की चंचलता को दूर करता है।
- भोजन के बाद किया जानेवाला यह एकमात्र आसन है। इसके करने से अपचन, अम्लपित्त, गैस, कब्ज आ की निवृत्ति होती है। भोजन के बाद ५ से १५ मिनट तक करने से भोजन का पाचन ठीक से हो जाता वैसे दैनिक योगाभ्यास में इसे १ से ३ मिनट तक करना चाहिए।
- घुटनों की पीड़ा को दूर करता है।

सुप्तवज्रासन

विधि :

- वज्रासन में बैठकर हाथों को पार्श्वभाग में रखकर उनकी सहायता से शरीर को पीछे झुकाते हुए भूमि पर को टिका दें। घुटने मिले हुए हों तथा भूमि पर टिके हुए हों।
- धीरे-धीरे कन्धों, ग्रीवा एवं पीठ को भी भूमि पर टिकाने का प्रयत्न करें। हाथों को जंघाओं पर सीधा
- आसन को छोड़ते समय कोहनियों एवं हाथों का सहारा लेते हुए वज्रासन में बैठ जायें।

सुप्तवज्रासन
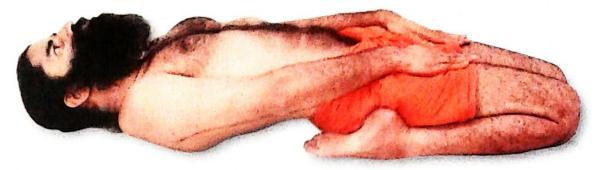
लाभ :

- इस आसन से पेट के नीचेवाला भाग खींचता है, जिससे बड़ी आँत सक्रिय होने से कोष्ठबद्धता दूर होती है।
- नाभि का टलना दूर करता है, गुर्दों के लिए भी लाभप्रद है।

शशकासन

विधि :

- वज्रासन में बैठकर दोनों हाथों को श्वास भरते हुए ऊपर उठायें।
- आगे झुकते हुए श्वास बाहर निकालें तथा हाथों को आगे फैलाते हुए हथेलियाँ नीचे की ओर रखते हुए कोहनियों तक हाथों को भूमि पर टिका दें। माथा भी भूमि पर टिका हुआ हो।
- कुछ समय इस स्थिति में रहकर पुनः वज्रासन में आ जायें।

शशकासन

लाभ :

- हृदय की स्वाभाविक मालिश करता है। इसलिए हृदयरोगियों के लिए लाभकारी है।
- आँत, यकृत्, अग्न्याशय एवं गुर्दों को बल प्रदान करता है।
- मानसिक रोग, तनाव, क्रोध, चिड़चिड़ापन, गुस्सा आदि को दूर करता है।
- स्त्रियों के गर्भाशय को बल देता है। पेट, कमर एवं कूल्हों की चर्बी कम करता है।

मण्डूकासन (१)

विधि :

- वज्रासन में बैठकर दोनों हाथों की मुट्ठी बन्द करें। मुट्ठी बन्द करते समय अंगूठे को अंगुलियों से अन्दर दबायें।
- दोनों मुट्ठियों को नाभि के दोनों ओर लगाकर श्वास बाहर निकालते हुए सामने झुकें। दृष्टि सामने रहे।
- थोड़ी देर इसी स्थिति में बने रहने के बाद वापस वज्रासन में आ जायें। इस प्रकार ३ से ४ आवृत्ति करें।
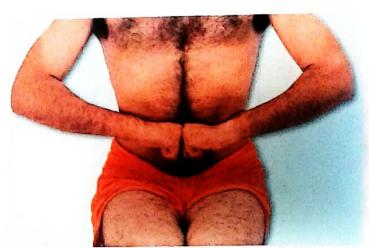
मण्डूकासन (१)

लाभ :

- अग्न्याशय (पेन्क्रियाज) को सक्रिय करता है। इसलिए इन्स्युलिन अधिक मात्रा में बनने लगता है। अतः डायबिटीज को दूर करने में सहायक होता है।
- उदर रोगों में उपयोगी है।
- हृदय के लिए लाभदायक है।

मण्डूकासन (२)

विधि :

वज्रासन में बैठकर बायें हाथ की हथेली पर दायें हाथ की हथेली रखते हुए नाभि पर रखकर पेट को अन्दर दबायें तथा श्वास को बाहर निकालते हुए मण्डूकासन सं० १ की तरह झुकें। इस प्रकार ३ से ४ आवृत्ति करें।

लाभ : पूर्ववत्।

कूर्मासन

विधि :
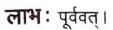
- वज्रासन में बैठकर कोहनियों को नाभि के दोनों ओर लगायें। हथेलियों को ऊपर की ओर रखते हुए हाथों को मिलाकर सीधा रखें।
- श्वास बाहर निकालते हुए सामने झुकें। ठोड़ी का हथेलियों से स्पर्श करें। दृष्टि सामने रहे। श्वास लेते हुए वापस आयें या श्वास-प्रश्वास की गति सामान्य करके १ मिनट के लगभग नीचे झुके रहें।

कूर्मासन

लाभ : पूर्ववत्।

पश्चिमोत्तानासन

विधि :

- दण्डासन में बैठकर दोनों हाथों के अंगुष्ठों एवं तर्जनी की सहायता से पैरों के अंगूठों को पकड़ें।
- श्वास बाहर निकालकर सामने झुकते हुए सिर को घुटनों के बीच लगाने का प्रयत्न करें। पेट को उड्डीयान बन्ध की स्थिति में रख सकते हैं। घुटने-पैर सीधे भूमि पर लगे हुए तथा कोहनियाँ भी भूमि पर टिकी हुई हों। इस स्थिति में शक्ति के अनुसार आधे से तीन मिनट तक रहें। फिर श्वास छोड़ते हुए वापस सामान्य स्थिति में आ जायें।
- इस आसन के बाद इसके प्रतियोगी आसन भुजंगासन एवं शलभासन करने चाहिए।

पश्चिमोत्तानासन
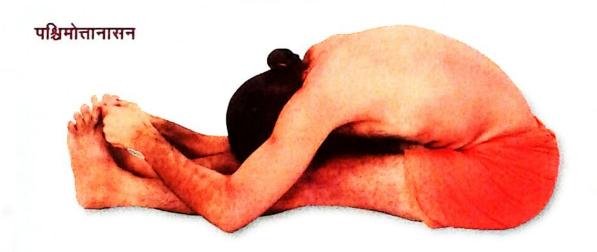
लाभ :

- पृष्ठभाग की सभी मांसपेशियाँ विस्तृत होती हैं। पेट की पेशियों में संकुचन होता है। इससे उनका स्वास्थ्य सुधरता है।
- 'हठयोगप्रदीपिका' के अनुसार यह आसन प्राणों को सुषुम्णा की ओर उन्मुख करता है, जिससे कुण्डलिनी-जागरण में सहायता मिलती है।
- जठराग्नि को प्रदीप्त करता है एवं वीर्य-सम्बन्धी विकारों को नष्ट करता है। कद-वृद्धि के लिए यह महत्त्वपूर्ण आसन है।

वक्रासन

विधि :

- दण्डासन में बैठकर दायाँ पैर मोड़कर बायीं जंघा के पास घुटने से सटाकर रखें, बायाँ पैर सीधा रहे।
- बायें हाथ को दायें पैर एवं पेट के बीच से लाकर दायें पैर के पंजे के पास टिकायें।

- दायें हाथ को कमर के पीछे भूमि पर सीधा रखें। ग्रीवा को घुमाकर दायीं ओर मोड़कर देखें, बायाँ पैर, कमर और दायाँ हाथ सीधे रहेंगे। इसे ४ से ६ बार कर सकते हैं।
- इसी प्रकार दूसरी ओर से करना चाहिए।

वक्रासन

लाभ : कमर की चर्बी को कम करता है। यकृत् तथा तिल्ली के लिए लाभदायक है।

अर्द्धमत्स्येन्द्रासन

विधि :

- दण्डासन में बैठकर बायें पैर को मोड़कर एड़ी को नितम्ब के पास लगायें।
- दायें पैर को बायें पैर के घुटने के पास बाहर की ओर भूमि पर रखें।
- बायें हाथ को दायें घुटने के समीप बाहर की ओर सीधा रखते हुए दायें पैर के पंजे को पकड़ें।
- दायें हाथ को पीठ के पीछे से घुमाकर पीछे की ओर देखें।
- इसी प्रकार दूसरी ओर से इस आसन को करें।

अर्द्धमत्स्येन्द्रासन

लाभ :

- मधुमेह एवं कमर-दर्द में लाभकारी है।
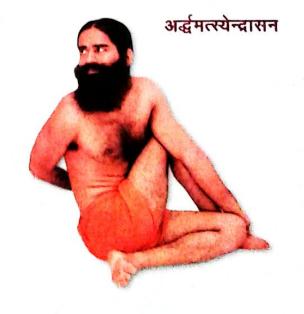
- पृष्ठदेश की सभी नस-नाड़ियों में (जो मेरुदण्ड के इर्दगिर्द फैली हुई हैं) रक्त-संचार को सुचारु रूप से सम्पन्न करता है।
- उदर-विकारों को दूर कर आँतों को बल प्रदान करता है।

पूर्णमत्स्येन्द्रासन

विधि :

पूर्णमत्स्येन्द्रासन

- पूर्ववत् बैठकर बायें पैर को मोड़कर दायीं जंघा के ऊपर नाभि के पास सटाकर रखें तथा दायें पैर को मोड़कर बायें पैर के घुटने के समीप बाहर की ओर पंजा टिकाकर रखें।
- बायें हाथ को दायें घुटने के पास बाहर की ओर रखते हुए दायें पैर का पंजा या अंगूठा पकड़ें।
- दायें हाथ को पीठ की तरफ पीठ के पीछे भूमि पर रखें।
- इस स्थिति में आधे से तीन मिनट तक रहना चाहिए।
- यह आसन दायें-बायें दोनों ओर से करना चाहिए।

लाभ : पूर्ववत्

गोमुखासन

विधि :

गोमुखासन

- दण्डासन में बैठकर बायें पैर को मोड़कर एड़ी को दायें नितम्ब के पास रखें अथवा एड़ी पर बैठ भी सकते हैं।
- दायें पैर को मोड़कर बायें पैर के ऊपर इस प्रकार रखें कि दोनों घुटने एक दूसरे से स्पर्श करते हुए हों।
- दायें हाथ को ऊपर उठाकर पीठ की ओर मोड़ें तथा बायें हाथ को पीठ के पीछे से लेकर दायें हाथ को पकड़ें। गर्दन और कमर सीधी रहे।
- एक ओर से लगभग एक मिनट तक करने के पश्चात् दूसरी ओर से इसी प्रकार करें।

लाभ :
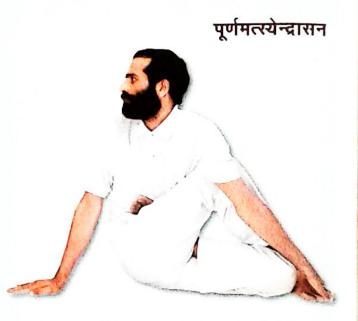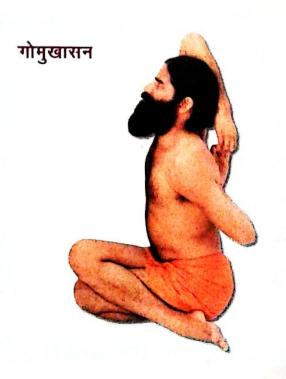
- अण्डकोष वृद्धि एवं अन्त्र-वृद्धि में विशेष लाभप्रद है।
- धातुरोग, बहुमूत्र एवं स्त्रीरोगों में लाभकारी है।
- यकृत, गुर्दे एवं वक्षःस्थल को बल देता है। सन्धिवात एवं गठिया को दूर करता है।

पशुविश्रामासन

विधि :

- दण्डासन में बैठकर बायें पैर को इस प्रकार मोड़कर रखें कि पंजा बाहर की ओर हो तथा एड़ी नितम्ब से लगी हुई हो।
- दायें पैर को मोड़कर उसका पंजा बायीं जाँघ से लगाकर रखें।
- श्वास अन्दर भरते हुए दोनों हाथों को ऊपर उठायें तथा श्वास बाहर छोड़ते हुए दायीं ओर झुकें, सिर तथा हाथ भूमि पर टिक जाने दें। श्वास अन्दर लेते हुए वापस हाथों को ऊपर लायें तथा श्वास बाहर छोड़ते हुए बायीं ओर झुकें। नीचे झुकते तथा ऊपर उठते हुए हाथों को कानों से लगाकर सीधा रखें।
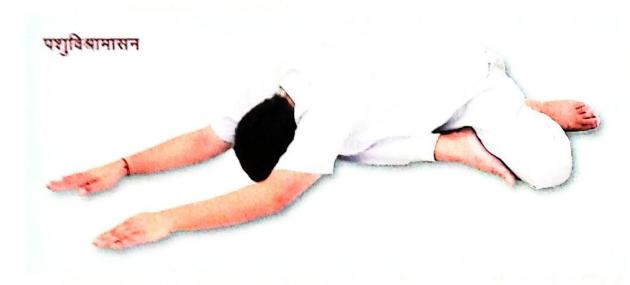
- इसी प्रकार पैर बदलकर इस आसन का दूसरी तरफ से अभ्यास करें।

लाभ : कमर के पार्श्वों में बढ़ी हुई चर्बी को कम करता है। मधुमेह एवं उदर रोगों में लाभप्रद है।

जानुशिरासन

विधि :

- दण्डासन में बैठकर दायें पैर को मोड़कर पंजे को बायें जंघे के मूल में लगायें और एड़ी को सीवनी (उपस्थ एवं गुदा के बीच का भाग) से सटाकर रखें।

■ दोनों हाथों से बायें पैर के पंजे को पकड़कर श्वास बाहर निकालकर सिर को घुटने से लगायें। थोड़ी देर रुकने के पश्चात् श्वास लेते हुए ऊपर उठ जायें और दूसरे पैर से भी इसी प्रकार दोहरायें।

जानुशिरासन

लाभ : पश्चिमोत्तानासन के समान लाभप्रद है।

विश्राम हेतु आसन

शवासन (योगनिद्रा)

शवासन
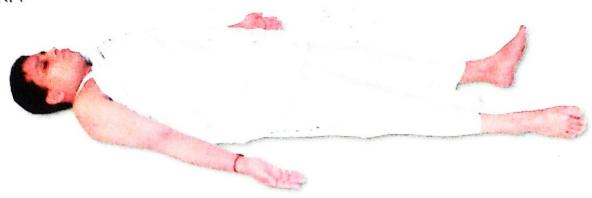
पीठ के बल सीधे भूमि पर लेट जायें। दोनों पैरों में लगभग एक फुट का अन्तर हो तथा दोनों हाथों को भी जंघाओं से थोड़ी दूरी पर रखते हुए हाथों को ऊपर की ओर खोलकर रखें। आँखें बन्द, गर्दन सीधी, पूरा शरीर तनाव-रहित अवस्था में हो। धीरे-धीरे चार-पाँच श्वास लम्बे भरें और छोड़ें। अब मन द्वारा शरीर के प्रत्येक भाग को देखते हुए संकल्प द्वारा एक-एक अवयव को शिथिल तथा तनाव-रहित अवस्था में अनुभव करना है। जीवन के समस्त कार्यों और महान् उद्देश्यों की सफलता के पीछे संकल्प की ही शक्ति मुख्य हुआ करती है। अब हमें इस समय शरीर को पूर्ण विश्राम देना है। इसके लिए भी हमें शरीर के विश्राम अथवा शिथिलीकरण का संकल्प करना होगा।

सर्वप्रथम बन्द आँखों से ही मन की संकल्प-शक्ति द्वारा पैरों के अंगूठों एवं अंगुलियों को देखते हुए उनको भी नितान्त ढीला और तनाव-रहित अनुभव करें। पंजों के बाद पैर की एड़ियों को देखते हुए उनको भी शिथिल अवस्था में अनुभव करें। अब पिंडलियों को देखें और यह विचार करें कि मेरी पिंडलियाँ पूर्ण स्वस्थ, तनाव-रहित एवं पूर्ण विश्राम की अवस्था में हैं और फिर अनुभव करें कि शिथिलीकरण के विचार-मात्र से शरीर को पूर्ण विश्रान्ति मिल रही है। जैसे अति दु:ख के चिन्तन से रुदन, अति सुख के चिन्तन से हर्ष एवं वीरता के विचार मात्र से ही शरीर का खून खौलने लगता है, वैसे ही शरीर के शिथिलीकरण के विचार-मात्र से एक पूर्ण विश्रान्ति का अनुभव होता है। पिंडलियों के बाद अब घुटनों को देखते हुए उनको स्वस्थ, तनाव रहित एवं पूर्ण विश्राम की अवस्था में अनुभव करें। मन ही मन जंघाओं को देखें और उनको भी पूर्ण विश्राम की दशा में अनुभव करें। जंघाओं के बाद शनै:-शनै: शरीर के ऊपरी भाग कमर, पेडू, पेट एवं पीठ को सहजतापूर्वक देखते हुए पूर्ण स्वस्थ और तनाव-रहित अवस्था में अनुभव करें। अब शान्त भाव

से मन को हृदय पर केन्द्रित करते हुए हृदय की धड़कन को सुनने का प्रयत्न करें। हृदय के दिव्यनाद का श्रवण करते हुए विचार करें कि मेरा हृदय पूर्ण स्वस्थ, तनाव-रहित एवं पूर्ण विश्राम की अवस्था में है, कोई रोग या विकार मेरे हृदय में नहीं है। अब हृदय एवं फेफड़ों को शिथिल करते हुए अपने कन्धों को देखें और उनको तनाव-रहित, नितान्त शिथिल अवस्था में अनुभव करें। फिर क्रमशः भुजाओं, कोहनियों, कलाइयों-सहित दोनों हाथों की अंगुलियों एवं अंगूठों को भी देखें और पूरे हाथ को तनाव-रहित, ढीला एवं पूर्ण विश्राम की अवस्था में अनुभव करें।

अब अपने चेहरे को देखें और विचार करें कि मेरे मुख पर चिन्ता, तनाव एवं निराशा का कोई भी अशुभ भाव नहीं है। मेरे मुख पर प्रसन्नता, आनन्द, आशा एवं शान्ति का दिव्यभाव है। आँखें, नाक, कान, मुख आदि-सहित पूरे चेहरे पर असीम आनन्द का भाव है। अबतक हमने मन के शुभभाव और दिव्य संकल्प के द्वारा शरीर को पूर्ण विश्रान्ति प्रदान की है। अब मन को विश्रान्ति प्रदान करनी है, मन को भी शिथिल करना है। हमें मन में उठते हुए संकल्पों के भी पार जाना है। इसके लिए हमें आत्मा का आश्रय लेना होगा। विचार करें– मैं नित्य शुद्ध-बुद्ध, निर्मल, पावन, शान्तिमय, आनन्दमय, ज्योतिर्मय अमृतपुत्र आत्मा हूँ। मैं सदा ही पूर्ण एवं शाश्वत हूँ। मुझमें किसी चीज का अभाव नहीं है, अपितु मैं सदा ही भाव एवं श्रद्धा से परिपूर्ण हूँ। मैं सच्चिदानन्द भगवान् का अंश हूँ। मैं भगवान् का अमृतपुत्र हूँ। मैं प्रकृति, शरीर, इन्द्रियों एवं मन के बन्धन से रहित हूँ। मेरा वास्तविक आश्रय तो मेरा प्रभु है। बाहर की समृद्धि के घटने एवं बढ़ने से मैं दरिद्र, दीन, अनाथ अथवा सनाथ अथवा राजा नहीं हो जाता। मैं तो सदा एकरस हूँ। जो परिवर्त्तन हो रहे हैं, वे जगत् के धर्म हैं, मुझ आत्मा के धर्म नहीं। इस प्रकार आत्मा की दिव्यता का चिन्तन करते हुए अपने नकारात्मक विचारों को हटायें; क्योंकि नकारात्मक विचार से ही व्यक्ति दुःखी, अशान्त एवं परेशान होता है। नकारात्मक चिन्तन से व्यक्ति को मानसिक अवसाद (डिप्रेशन) होता है और व्यक्ति सदा ही मानों दुःख के सागर में डूबा-सा रहता है। सकारात्मक चिन्तन से व्यक्ति प्रतिकूल अवस्थाओं में भी सम, प्रसन्न और आनन्दित रह सकता है। इसलिए व्यक्ति को केवल शवासन या योगनिद्रा के समय ही नहीं, दिन में भी सदा ही सकारात्मक चिन्तन करना चाहिए। इस प्रकार हमने आत्मा की दिव्यता का सकारात्मक विचार करते हुए मन को विश्रान्ति दी और अब परमात्मा के दिव्य स्वरूप का ध्यान करते हुए आत्मा को भी पूर्ण विश्राम प्रदान करेंगे।

विचार करें कि आपका आत्मा शरीर से बाहर निकल आया है और शरीर के ऊपर आकाश में स्थिर होकर आप आत्मभाव से शरीर को ऐसा ही अनुभव कर रहे हैं, जैसा कि कोई शव भूमि पर लेटा हुआ हो। इसलिए इस स्थिति को शवासन कहते हैं। अब आप अपनी चेतना-शक्ति आत्मा को अनन्त आकाश में व्याप्त सच्चिदानन्द स्वरूप भगवान् के प्रति समर्पित कर दें। विचार करें कि आपके आत्मा को चारों ओर

से भगवान् का दिव्य आनन्द प्राप्त हो रहा है। भगवान् की सृष्टि का जो दिव्य सुख है, उसका अनुभव करें। भगवान् के प्रति समर्पित होकर जो भी शुभ संकल्प किया जाता है, वह पूर्ण होता है। आप विचार करें, भगवान् की सृष्टि की दिव्यताओं का और फिर इस अद्भुत प्रकृति की रूप-रचना का ध्यान करते हुए भगवान् की दिव्यता का संकल्प करें। विचार करें कि आप किसी सुन्दर मनोहारी फूलों की घाटी में हैं, जहाँ तरह-तरह के पुष्पों की सुन्दर कलियों के मनभावन सुगन्ध से पूरा वातावरण सुरभित हो रहा है। चारों ओर एक दिव्यता है। भगवान् की एक-एक लीला देखते ही बनती है। कोई अन्त नहीं, भगवान् की महिमा का। इन्हीं पुष्पवाटिकाओं के साथ विविध वृक्षों पर सुन्दर फल लगे हैं, हर फल को विधाता परमेश्वर ने अलग-अलग रसों से भरा है। चारों ओर से मन्द-मन्द मनभावन समीर बहता हुआ आनन्द प्रदान कर रहा है। इस सुन्दर उपवन में ही पक्षी अपने सुमधुर स्वर से भगवान् की अनन्त महिमा का स्तवन कर रहे हैं। हर कली, हर फूल और फल से भगवान् के साक्षात् दर्शन हो रहे हैं। आकाश की ओर आँखें उठाकर देखें तो ऐसा लगे कि चाँद और तारे तथा सूरज मानो भगवान् के विशाल ब्रह्माण्ड-रूपी मन्दिर में दीपक की भाँति जलकर सबको प्रकाशित कर रहे हैं। नदियाँ बहती हुई मानो भगवान् के पाद-प्रक्षालन कर रही हैं। कितना महान्, असीम, अपरिमित, अनन्त है वह ब्रह्म। हे प्रभो! हे पिता! हे जगत्-जननी माँ! मुझ पुत्र को भी अपनी शरण में ले लो। अपना दिव्य आनन्द माँ मुझे प्रदान करो। प्रभो! मुझे सदा तुम्हारी दिव्यता, शान्ति एवं ज्योति प्राप्त होती रहे। मैं सदा तेरी ही अनन्त महिमा का चिन्तन करता हुआ तुझमें ही रमण करूँ, तेरे ही अनन्त आनन्द में निमग्न रहूँ। हे प्रभो! मुझे जगत् के विकारी भावों से सदा के लिए हटाकर अपनी आनन्दमय गोद में ले लो।

इस प्रकार, भगवान् की दिव्यता का अनुपम आनन्द लेकर पुनः अपने-आपको इस शरीर में अनुभव करें। विचार करें कि आप योगमयी निद्रा से पुनः इस शरीर में आ गये हैं। श्वास-प्रश्वास चल रहा है। श्वास के साथ जीवनीय प्राण की महान् शक्ति आपके भीतर प्रवेश कर रही है। अपने-आपको स्वस्थ, प्रसन्न एवं आनन्दित अनुभव करें और जिस तरह से शरीर को संकल्प के द्वारा शिथिल किया था, उसी तरह से दिव्य संकल्प के साथ पूरे शरीर में नई शक्ति, आरोग्य तथा दिव्य चेतना और आनन्द का अनुभव करें। पैर के अंगूठे से सिर पर्यन्त प्रत्येक अंग को देखें और जिस-जिस अंग को देखते जायें, उस-उस अंग को पूर्ण स्वस्थ अनुभव करें। जैसे किसी को घुटनों अथवा कमर में दर्द है तो वह विचार करें कि मेरा दर्द बिल्कुल दूर हो गया है। योग के अभ्यास तथा भगवान् की कृपा से मेरे घुटने एवं कमर में कोई पीड़ा नहीं है; क्योंकि योग के अभ्यास से इन रोगों के मूल कारण का ही अन्त हो गया है। दर्द बाहर निकल रहा है। इसी प्रकार पेट और हृदय का भी कोई रोग हो तो उसके ठीक होने का विचार करें। यदि कोई हृदय की नलिकाओं में अवरोध है, कॉलेस्ट्रोल आदि बढ़ा हुआ है तो अपने-अपने रोगों के ठीक होने का विचार करें। यह संकल्प करें कि मेरे

शरीर से सभी विजातीय तत्त्व, रोग एवं विकार निकल रहे हैं, मैं पूर्ण स्वस्थ हो रहा हूँ। इस तरह विचार करते हुए अपने-आपको शारीरिक तथा मानसिक रूप से पूर्ण स्वस्थ अनुभव करें।

अन्त में दोनों हाथों को भी पूर्ण स्वस्थ तथा शक्तिशाली अनुभव करते हुए दोनों हाथों को आपस में रगड़ें और गर्म-गर्म हथेलियों को आँखों पर रखकर धीरे-धीरे आँखें खोल लें। यह शवासन और योगनिद्रा की संक्षिप्त विधि है। यदि किसी को नींद न आती हो तो सोने से पहले शवासन करें और शवासन में पूरे शरीर को पूर्व-निर्दिष्ट विधि से ढीला एवं तनाव-रहित छोड़कर भगवान् की दिव्यता तथा अपने मन को श्वास-प्रश्वास पर केन्द्रित करके प्रत्येक श्वास-प्रश्वास के साथ 'ओम्' का मानसिक जप करना चाहिए। श्वास को अन्दर भरते तथा बाहर छोड़ते हुए 'ओम्' का अर्थपूर्वक ध्यान करना चाहिए। 'ओम्' का अर्थ है - सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा, ओंकार प्रभु सदा ही सत्य स्वरूप, चैतन्य तथा आनन्दमय हैं। मैं भी ओंकार प्रभु की उपासना से आनन्दित हो रहा हूँ। ऐसा विचार करते हुए 'ओम्' का अर्थपूर्वक जप करना चाहिए। श्वास-प्रश्वास की गति सहज होनी चाहिए। इसी प्रक्रिया में १०० से १ तक उल्टी गिनती गिनते हुए प्रत्येक संख्या के साथ 'ओम्' का जप करते हुए भी यह प्रक्रिया कर सकते हैं। जैसे ओम् १००, ओम् ९९, ओम् ९८ आदि। इस प्रकार, जप करने से थोड़ी ही देर में गाढ़ निद्रा आ जायेगी तथा बुरे स्वप्न से भी छुटकारा मिलेगा। दैनिक योगाभ्यास के दौरान कठिन आसन के बाद विश्राम हेतु इस आसन को करते रहना चाहिए। योगासनों के अभ्यास के अन्त में इसे ५ से १० मिनट तक करना चाहिए।

लाभ:

- मानसिक तनाव (डिप्रेशन), उच्च रक्तचाप, हृदयरोग तथा अनिद्रा के लिए यह आसन सर्वोत्तम है। इन रोगियों को यह आसन नियमित करना चाहिए।
- इस आसन के करने से स्नायु-दुर्बलता, थकान तथा नकारात्मक चिन्तन दूर होता है।
- शरीर, मन, मस्तिष्क एवं आत्मा को पूर्ण विश्राम, शक्ति, उत्साह एवं आनन्द मिलता है।
- ध्यान की स्थिति का विकास होता है।
- आसन करते हुए बीच-बीच में शवासन करने से थोड़े ही समय में शरीर की थकान दूर हो जाती है।

मकरासन (१)

विधि :

- पेट के बल लेट जायें। दोनों हाथों को मोड़ते हुए विपरीत दिशा की भुजाओं पर रखें।
- माथा दोनों हाथों पर टिका कर रखें। पैरों में लगभग १ फुट का फासला होना चाहिए।
- शरीर को शव की भाँति शिथिल छोड़ दें। इस आसन में लेटते हुए आप शव जैसा अनुभव करें तथा

मकरासन (१)

विवेकपूर्वक चिन्तन, मनन करते हुए अपने-आपको आत्मकेन्द्रित करें। मैं इस शरीर से पृथक् शुद्ध-बुद्ध आनन्दमय एवं अविकारी चैतन्य आत्मा हूँ। यह शरीर तो नश्वर है। यह शरीर पंचतत्त्वों का समूह-मात्र है। समय आने पर यह उन्हीं पंचतत्त्वों में विलीन हो जाता है। यह शरीर एवं अन्य सब सम्पत्तियाँ यहीं रह जाती है। न हम कुछ साथ लेकर आये और न ही कुछ साथ लेकर जायेंगे। इस प्रकार अपने चित्त को इस नश्वर संसार से हटाते हुए अनन्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त अनन्त ब्रह्म में अपने-आपको समाहित समर्पित करते हुए अखण्ड आनन्द की अनुभूति करें।

लाभ :

- यह विश्राम का आसन है। विश्राम में केवल शारीरिक ही नहीं, मानसिक रूप से भी व्यक्ति अपने-आपको हल्का अनुभव करता है। उच्च रक्तचाप, मानसिक तनाव एवं अनिद्रा से मुक्ति मिलती है। आसनों को करते समय बीच-बीच में विश्राम के लिए इसको करना चाहिए। इससे पेट की आँतों की स्वाभाविक मालिश हो जाती है, जिससे वे सक्रिय होकर मन्दाग्नि आदि विकारों को दूर करती हैं।
- हाथों को 'पैसिव स्ट्रेचिंग कण्डीशन' में होने से 'पैरा सैम्पैथेटिक नर्व्ज' प्रभावित होती हैं, जिससे शरीर को शिथिल छोड़ने में सहायता मिलती है।

- हृदय को गुरुत्वाकर्षण के विरुद्ध कार्य न करने के कारण विश्राम मिलता है।
- अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ लाभान्वित होती हैं।

बालासन (विश्रामासन)

विधि:

- पेट के बल लेटकर बायें हाथ को सिर के नीचे भूमि पर रखें तथा गर्दन को दायीं ओर घुमाते हुए सिर को हाथों पर रख दें, बायाँ हाथ सिर के नीचे होगा तथा बायें हाथ की हथेली दायें हाथ के नीचे रहेगी।
- दायें पैर को घुटने से थोड़ा मोड़कर जैसे बालक लेटता है, वैसे लेटकर विश्राम करें। इसी प्रकार यह आसन दूसरी ओर से किया जाता है।

बालासन (विश्रामासन)

लाभ: शवासन की भाँति पूरे शरीर और मन की थकान को दूर करता है।

मोटापा घटाने के लिए विशेष आसनों का अभ्यास

द्विचक्रिकासन

विधि:

- पीठ के बल लेटकर हाथों के पंजे नितम्ब के नीचे रख, श्वास रोककर एक पैर को पूरा ऊपर उठाकर घुटने से मोड़कर एड़ी नितम्ब के पास होकर गोलाकार (साइकिल चलाने की तरह) घुमाते रहें। दस से लेकर यथाशक्ति २५-३० बार इसकी आवृत्ति करें।
- इसी प्रकार दूसरे पैर से इस क्रिया को करें। पैरों को बिना जमीन पर टिकाये घुमाते रहें। पैरों से वृत्ताकृति (गोलाकार आकृति) बनायें। दस से लेकर यथाशक्ति २५-३० बार इसकी आवृत्ति करें।

द्विचक्रिकासन (प्रथम स्थिति)

- थक जाने पर शवासन में थोड़ी देर विश्राम करके इसी अभ्यास को विपरीत दिशा से दोहरायें तथा थक जाने पर विश्राम कर लें।
- इसी अभ्यास को अगली स्थिति में दोनों पैरों को निरन्तर साइकिल की भाँति चलायें। श्वास भरकर एक पैर घुटने से मोड़कर सीने की तरफ, दूसरा सीधा फैलायें, भूमि के निकट तक लम्बा फैलायें। श्वास भरकर इस प्रकार पैर चलायें जिस प्रकार साइकिल पर बैठकर चलाते हैं। फिर विपरीत दिशा में इसी प्रकार दोनों पैरों को निरन्तर एक साथ साइकिल की तरह चलायें। जिनको कमर में दर्द, हृदय रोग या हर्निया रोग नहीं हो वे दोनों पैरों को एक साथ मिलाकर साइकिल की तरह चलायें। (आगे का चित्र देखें) फिर शवासन में विश्राम कर लें। इसे भी ५ से १० बार या यथाशक्ति करें।

द्विचक्रिकासन (द्वितीय स्थिति)

लाभ :

- मोटापा घटाने के लिए यह सर्वोत्तम आसन है। यदि नियमित रूप से ५ से १० मिनट तक इसका अभ्यास किया जाये तो, यह अनावश्यक बढ़े हुए भार को शीघ्र की कम कर देता है।
- पेट को सुडौल बनाता है। आँतों को सक्रिय करता है। कब्ज, मन्दाग्नि, अम्लपित्त आदि की निवृत्ति करता है।
- यदि कमर-दर्द हो तो इस आसन को एक-एक पैर से ही करने पर भी लाभकारी है।

पादवृत्तासन

विधि :

- सीधे लेट जायें। दायें पैर को उठाकर शून्याकृति बनाते हुए घड़ी की दिशा में घुमायें। इस प्रकार भूमि पर बिना टिकाये ही एक दिशा से ५ से १० आवृत्ति करें।

पादवृत्तासन (प्रथम स्थिति)

पादवृत्तासन (द्वितीय स्थिति)

- एक दिशा से घुमाने के बाद दूसरी दिशा से पैर को घड़ी की विपरीत दिशा में (एण्टी क्लॉकवाइज) वृत्ताकार घुमायें। थकने पर शवासन में विश्राम कर लें।
- एक-एक पैर से करने के पश्चात् दोनों पैरों से एक साथ इस अभ्यास को करें। पैरों को ऊपर-नीचे, दायें एवं बायें चारों ओर जितना ले जा सकते हैं, उतना ले जाते हुए घुमाना चाहिए। दोनों पैरों से भी दोनों दिशाओं से क्लॉकवाइज तथा एण्टी क्लॉकवाइज घुमाना चाहिए।

लाभ :

- यह आसन भी अतिरिक्त बढ़े हुए भार को कम करने के लिए है।
- जंघा, नितम्ब एवं कमर के बढ़े हुए मेद को निश्चित रूप से दूर करता है तथा पेट को हल्का तथा सुडौल बनाता है।

अर्द्ध-हलासन

विधि :

यह आसन उत्तानपादासन की तरह ही है- अन्तर केवल इतना ही है कि उत्तानपादासन में दोनों पैर करीब ३०° (करीब १ फुट) ऊँचे उठाते हैं, जबकि अर्द्ध-हलासन में दोनों पैर ९० डिग्री तक उठाते हैं।

अर्द्ध-हलासन

लाभ :

उत्तानपादासन के सभी लाभ इस आसन से भी प्राप्त होते हैं। मोटापा घटाने में यह आसन विशेष सहायक है।
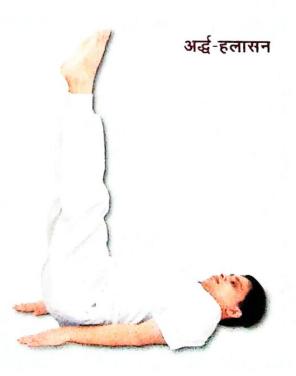
मेरुदण्ड (कमर-दर्द आदि) हेतु

विशेष आसन

यहाँ जिन आसनों का वर्णन करेंगे, वे आसन मुख्यतः कमर-दर्द, सर्वाइकल, स्पोण्डोलाइटिस, स्लिप डिस्क, सियाटिका आदि मेरुदण्ड से सम्बन्धित सभी रोगों को दूर करने के लिए विशेष उपयोगी हैं। ईश्वर-कृपा से हमने अबतक हजारों स्लिप डिस्क आदि मेरुदण्ड के खतरनाक रोगियों को इन आसनों से पूर्ण स्वास्थ्य-लाभ कराया है। ऋषि-प्रतिपादित आरोग्य की इस निर्दोष एवं वैज्ञानिक पद्धति से प्राणिमात्र का हित हो, इसी भावना से ये आसन प्रयोगात्मक अनुभव के आधार पर यहाँ प्रतिपादित हैं। अस्थमा (श्वास रोग) में भी ये सभी आसन विशेष उपयोगी हैं; क्योंकि इन सभी आसनों को करते समय श्वास फेफड़ों में भरा जाता है। इससे फेफड़ों का आकुंचन-प्रसारण होकर वहाँ प्राण का संचार होता है और विजातीय तत्त्वों का निष्कासन होता है। फेफड़ों की सुप्त कोशिकाएँ फिर से चुस्त होने लगती हैं। इस प्रकार ये आसन फेफड़ों को स्वस्थ कर श्वास रोग को दूर करने में भी अत्यन्त सहायक हैं। पेट की ग्रन्थियाँ भी इन आसनों से स्वस्थ होती हैं। गुर्दे के रोग दूर होते हैं। इस प्रकार अनेक रोगों को दूर कर व्यक्ति को ये आसन सुस्वास्थ्य प्रदान करते हैं तथा स्वस्थ व्यक्ति को इन रोगों का शिकार नहीं होना पड़ता है।

सावधानियाँ:

जिन आसनों में पेट पर अधिक बल पड़ता है, उन आसनों को अल्सर, अन्त्र, टी.बी., हर्निया, यकृत् एवं तिल्ली-वृद्धि के रोगी न करें।

चक्रासन

विधि:

- पीठ के बल लेटकर घुटनों को मोड़ें। एड़ियाँ नितम्बों के समीप लगी हुई हों।
- दोनों हाथों को उल्टा करके कन्धों के पीछे थोड़े अन्तर पर रखें, इससे सन्तुलन बना रहता है।
- श्वास अन्दर भरकर कटिप्रदेश एवं छाती को ऊपर उठायें।
- धीरे-धीरे हाथ एवं पैरों को समीप लाने का प्रयत्न करें, जिससे शरीर की चक्र जैसी आकृति बन जाये।
- आसन से वापस आते समय शरीर को ढीला करते हुए कमर भूमि पर टिका दें। इस प्रकार ३ से ४ आवृत्ति करें।

लाभ :

चक्रासन

- रीढ़ की हड्डी को लचीला बनाकर वृद्धावस्था नहीं आने देता। जठर एवं आँतों को सक्रिय करता है।
- शरीर में स्फूर्ति, शक्ति एवं तेज की वृद्धि करता है।
- कटिपीड़ा, श्वासरोग, सिर-दर्द, नेत्र विकारों, सर्वाइकल एवं स्पोण्डोलाइटिस में यह विशेष हितकारी है।
- हाथ-पैरों की मांसपेशियों को सबल बनाता है।
- महिलाओं के गर्भाशय के विकारों को दूर करता है।
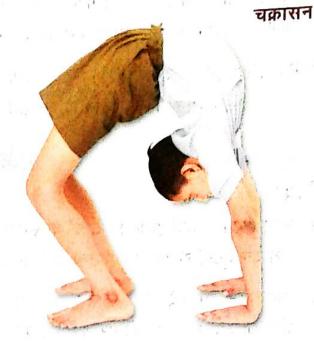
सेतुबन्ध-आसन

विधि :

- सीधे लेट जायें।
- दोनों घुटनों को मोड़ कर रखें। कटिप्रदेश को ऊपर उठाकर दोनों हाथों को कोहनी के बल खड़े करके कमर के नीचे लगायें।
- अब कटि को ऊपर स्थिर रखते हुए पैरों को सीधा करें। कन्धे एवं सिर भूमि पर टिके रहें।

इस स्थिति में ६ से ८ सेकण्ड तक रहें।

सेतुबन्ध-आसन

- वापस आते समय नितम्ब एवं पैरों को धीरे-धीरे जमीन पर टेकें। हाथों को एकदम कमर से नहीं हटाना चाहिए। शवासन में कुछ देर विश्राम करके पुनः अभ्यास को ४ से ६ बार दोहरायें।

लाभ : स्लिप डिस्क, कमर एवं ग्रीवा-पीड़ा तथा उदर रोगों में विशेष लाभप्रद है। जो चक्रासन नहीं कर सकते, वे इस आसन से लाभान्वित हो सकते हैं।

मर्कटासन (१)

विधि :

- सीधे लेटकर दोनों हाथों को कन्धों के समानान्तर फैलायें। हथेलियाँ आकाश की ओर खुली हों। फिर दोनों पैरों को घुटनों से मोड़कर नितम्ब के पास रखें।
- अब घुटनों को दायें ओर झुकाते हुए दायें घुटने को भूमि पर टिका दें। बायाँ घुटना दायें घुटने पर टिका हुआ हो तथा दायें पैर की एड़ी पर बायें पैर की एड़ी टिकी हुई हो। गर्दन को बायीं ओर घुमाकर रखें।
- इसी तरह से बायीं ओर से भी इस आसन को करें।

मर्कटासन (१)

लाभ :

- कमर-दर्द, सर्वाइकल स्पोण्डोलाइटिस, स्लिप डिस्क एवं सियाटिका में विशेष लाभकारी आसन है।
- पेट-दर्द, दस्त, कब्ज एवं गैस को दूर करके पेट को हल्का बनाता है।
- नितम्ब तथा जोड़ के दर्द में विशेष लाभदायक है। मेरुदण्ड की सभी विकृतियों को दूर करता है।

मर्कटासन (२)

विधि:

- पूर्व आसन की तरह लेट जायें। दोनों पैरों को घुटनों से मोड़कर नितम्बों के पास रखें। पैरों में लगभग डेढ़ फुट का अन्तर हो।
- अब दायें घुटने को दायीं ओर झुकाते हुए भूमि पर टिका दें। इतना झुकायें कि बायाँ घुटना दायें पंजे के पास पहुँच जायें तथा बायें घुटने को भी दायीं ओर दायें घुटने के पास भूमि पर टिका दें। गर्दन को बायीं ओर मोड़कर रखें।
- इसी तरह दूसरे पैर से भी करें।

मर्कटासन (२)

लाभ: पूर्ववत् हैं। पहले की अपेक्षा यह सरल अभ्यास है।

मर्कटासन (३)

विधि:

- सीधे लेटकर दोनों हाथों को कन्धों के समानान्तर फैलायें। हथेलियाँ आकाश की ओर खुली हों।
- दायें पैर को ९० डिग्री उठाकर धीरे-धीरे बायें हाथ के पास ले जायें, गर्दन को दायीं ओर मोड़कर रखें।
- कुछ समय इसी स्थिति में रहने के बाद पैर को ९० डिग्री पर सीधे उठाकर धीरे-धीरे भूमि पर टिका दें।

- इसी तरह बायें पैर से इस आसन को करें।
- अन्त में दोनों पैरों को एक साथ ९० डिग्री पर उठाकर बायीं ओर हाथ के पास रखें। गर्दन को विपरीत दिशा में मोड़ते हुए दायीं ओर देखें कुछ समय पश्चात् पैरों को यथापूर्व सीधा करें।
- इसी तरह दोनों पैरों को उठाकर दायीं ओर हाथ के पास रखें। गर्दन को बायीं ओर मोड़ते हुए बायीं ओर देखें। यह एक आवृत्ति हुई। इस प्रकार ३ से ४ आवृत्ति करें। जिनको कमर में अधिक पीड़ा हो, वे दोनों पैरों से एक साथ नहीं करें। उनको एक-एक पैर से ही २-३ आवृत्ति करनी चाहिए।

मर्कटासन (३)

लाभ : पूर्ववत्।

कटि-उत्तानासन

विधि :

- शवासन में लेटकर दोनों पैरों को मोड़कर रखें। दोनों हाथ दोनों ओर पार्श्व में फैलाकर रखें।
- श्वास अन्दर भरते हुए पीठ को ऊपर की ओर खींचे। नितम्ब तथा कन्धे भूमि पर टिके हुए हों। फिर श्वास छोड़ते हुए पीठ को नीचे भूमि पर दबाकर पूरा सीधा कर दें। इस प्रकार यह अभ्यास ८ से १० बार तक करें।

लाभ : स्लिप डिस्क, सियाटिका एवं कमर-दर्द में विशेष उपयोगी है।

कटि-उत्तानासन

मकरासन (२)

विधि :

- पेट के बल लेट जायें।
- दोनों हाथों की कोहनियों को मिलाकर स्टैण्ड बनाते हुए हथेलियों को ठोड़ी के नीचे लगायें। छाती को ऊपर उठायें। कोहनियों एवं पैरों को मिलाकर रखें।

मकरासन (२) प्रथम स्थिति
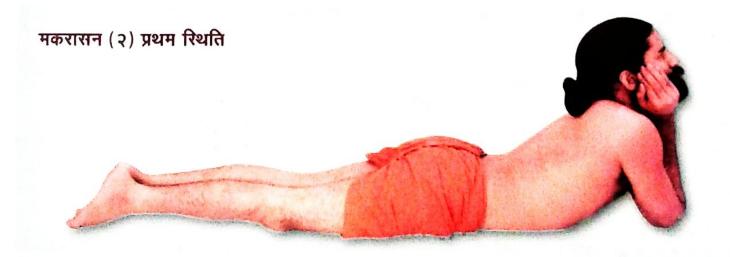
- अब श्वास भरते हुए पैरों को क्रमशः पहले एक-एक तथा बाद में दोनों पैरों को एक साथ मोड़ना चाहिए। मोड़ते समय पैरों की एड़ियाँ नितम्ब का स्पर्श करें। श्वास बाहर निकालते हुए पैरों को सीधा करना चाहिए। इस प्रकार २० से २५ आवृत्ति करें।

मकरासन (२) द्वितीय स्थिति

लाभ:

- स्लिप डिस्क, सर्वाइकल एवं सियाटिका के लिए यह लाभकारी अभ्यास है।
- अस्थमा और फेफड़े-सम्बन्धी किसी भी विकार तथा घुटनों के दर्द के लिए विशेष गुणकारी है।

भुजंगासन

विधि:

- पेट के बल लेट जायें। हाथों की हथेलियाँ भूमि पर रखते हुए हाथों को छाती के दोनों ओर रखें। कोहनियाँ ऊपर उठी हुईं तथा भुजाएँ छाती से सटी हुई होनी चाहिए।
- पैर सीधे तथा पंजे आपस में मिले हुए हों। पंजे पीछे की ओर तने हुए, भूमि पर टिके हुए हों।
- श्वास अन्दर भरकर छाती एवं सिर को धीरे-धीरे ऊपर उठायें। नाभि के पीछेवाला भाग भूमि पर टिका रहे। सिर को ऊपर उठाते हुए ग्रीवा को जितना पीछे की ओर मोड़ सकते हैं, मोड़ना चाहिए। इस स्थिति में करीब ३० सेकण्ड रहना चाहिए।

भुजंगासन

- इस प्रकार इसकी यथाशक्ति आवृत्ति करें। इसका अभ्यास होने के बाद इसी आसन को विस्तृत भुजंगासन या पूर्ण भुजंगासन के रूप में भी किया जा सकता है।

पूर्ण या विस्तृत भुजंगासन

लाभ: सर्वाइकल, स्पोण्डोलाइटिस एवं स्लिप डिस्क आदि समस्त मेरुदण्ड के रोगों के लिए अति महत्त्वपूर्ण आसन है।

धनुरासन

विधि:

- पेट के बल लेट जायें। घुटनों से पैरों को मोड़कर एड़ियाँ नितम्ब के ऊपर रखें। घुटने एवं पंजे आपस में मिले हुए हों।
- दोनों हाथों से पैरों को टखनों के पास से पकड़ें।
- श्वास अन्दर भरकर घुटनों एवं जंघाओं को क्रमशः उठाते हुए ऊपर की ओर तानें, हाथ सीधे रखें। पिछले हिस्से के उठने के पश्चात् पेट के ऊपरी भाग छाती, ग्रीवा एवं सिर को भी ऊपर उठायें। नाभि एवं पेट के आसपास का भाग भूमि पर ही टिका रहे। शेष भाग ऊपर उठा होना चाहिए। शरीर की आकृति डोरी तने हुए धनुष के समान हो जाएगी। इस स्थिति में १० से ३० सेकण्ड तक रहें।
- श्वास छोड़ते हुए क्रमशः पूर्व स्थिति में आ जायें। श्वास-प्रश्वास के सामान्य होने पर दूसरी बार करें। इस प्रकार ३ से ४ बार तक आवृत्ति करें।

लाभ :

- मेरुदण्ड को लचीला एवं स्वस्थ बनाता है। सर्वाइकल, स्पोण्डोलाइटिस, कमर-दर्द एवं उदर रोगों में लाभदायक आसन है।
- सूर्यकेन्द्र (नाभि) टलना दूर करता है।
- स्त्रियों की मासिक धर्म-सम्बन्धी विकृतियों में लाभदायक है।
- गुर्दों को पुष्ट करके मूत्रविकारों को दूर करता है। भय के कारण मूत्रस्त्राव होने जैसी स्थिति में लाभकारी है।

पूर्ण धनुरासन

विधि :

- पेट के बल लेट जायें। पीछे से दोनों पैरों को मोड़कर हाथों से उनके अंगूठों को पकड़ें।
- श्वास अन्दर भरते हुए हाथ, ग्रीवा एवं सिर तथा पीछे से दोनों पैरों को भूमि से ऊपर उठायें। थोड़े समय ऊपर ठहराकर श्वास छोड़ते हुए वापस भूमि पर अंगों को टिका दें।

पूर्ण धनुरासन

लाभ : पूर्ववत्।

शलभासन (१)

विधि :
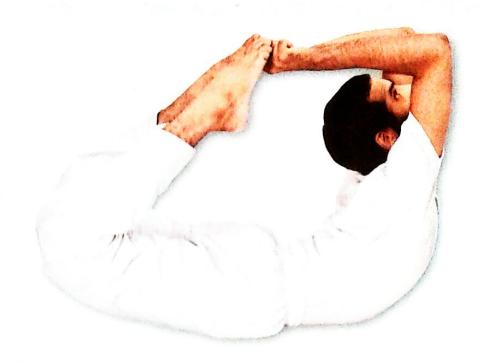
- पेट के बल लेटकर दोनों हाथों को जंघाओं के नीचे लगायें।
- श्वास अन्दर भरकर दायें पैर को उपर उठायें, घुटने से पैर नहीं मुड़ना चाहिए। ठोड़ी भूमि पर टिकी रहे। १० से ३० सेकण्ड तक इस स्थिति में रहें। इस प्रकार ५ से ७ आवृत्ति करें।

शलभासन (१) (प्रथम स्थिति)

- इसी प्रकार बायें पैर से करने के बाद दोनों पैरों से भी शलभासन २ से ४ बार करें।

शलभासन (१) (द्वितीय स्थिति)

लाभ : मेरुदण्ड के नीचेवाले भाग में होनेवाले सभी रोगों को दूर करता है। कमर-दर्द एवं सियाटिका-दर्द के लिए विशेष लाभप्रद है।

शलभासन (२)

विधि :

- पेट के बल लेटकर दायें हाथ को कान तथा सिर से स्पर्श करते हुए सीधा रखें तथा बायें हाथ को पीछे कमर के ऊपर रखें।
- श्वास अन्दर भरते हुए आगे से सिर एवं दायें हाथ को तथा पीछे से बायें पैर को भूमि से ऊपर उठायें।
- थोड़ी देर इस स्थिति में रुककर शनैः-शनैः वापस आयें। इसी तरह से बायीं ओर से यह आसन करें।

शलभासन (२)

लाभ : सर्वाइकल, स्पोण्डोलाइटिस, कमर-दर्द आदि सभी मेरुदण्ड के रोगों में अति लाभप्रद है।

शलभासन (३)

विधि:

पूर्व अभ्यास के पश्चात् दोनों हाथों को पीठ के पीछे ले जाकर एक दूसरे हाथ की कलाइयों को पकड़ें। श्वास अन्दर भरकर पहले छाती को यथाशक्ति उठाकर ऊपर की ओर देखें। फिर दोनों ओर से शरीर को धीरे-धीरे ऊपर उठायें। श्वास छोड़ते हुए वापस पूर्व स्थिति में आ जायें।

शलभासन (३)

लाभ: पूर्ववत्।

विपरीत नौकासन (नाभि-आसन)

विधि:

- पेट के बल लेटकर दोनों हाथों को मिलाकर सामने फैलायें। पैर भी पीछे मिले हुए तथा सीधे रहें। पंजे पीछे की ओर तने हुए हों।
- श्वास अन्दर भरकर दोनों ओर से शरीर को ऊपर उठायें। पैर छाती, सिर एवं हाथ भूमि से ऊपर उठे होने चाहिए। इस प्रकार ४ से ५ आवृत्ति करें।

विपरीत नौकासन (नाभि-आसन)

लाभ :
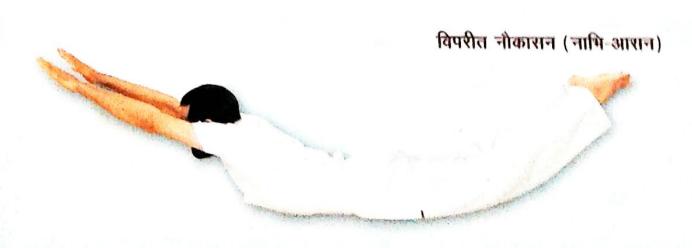
- मेरुदण्ड के समस्त रोगों में लाभप्रद है।
- नाभि-प्रदेश को शक्ति प्रदान करता है।
- गैस निकालता है।
- यौन रोग एवं दुर्बलता दूर करता है।
- पेट और कमर का मोटापा कम करता है।
- स्त्रियाँ यह आसन न करें।

उष्ट्रासन

विधि :

- वज्रासन की स्थिति में बैठें।
- अब एड़ियों को खड़ा करके उनपर दोनों हाथों को रखें। हाथों को इस प्रकार रखें कि अंगुलियाँ अन्दर की ओर तथा अंगुष्ठ बाहर को हों।
- श्वास अन्दर भरकर सिर एवं ग्रीवा को पीछे मोड़ते हुए कमर को ऊपर उठायें। श्वास छोड़ते हुए एड़ियों पर बैठ जायें। इस प्रकार तीन-चार आवृत्ति करें।

उष्ट्रासन

लाभ :

- यह आसन श्वसन-तन्त्र के लिए बहुत लाभकारी है। फेफड़ों के प्रकोष्ठ को सक्रिय करता है, जिससे दमा के रोगियों को लाभ होता है।
- सर्वाइकल, स्पोण्डोलाइटिस एवं सियाटिका आदि समस्त मेरुदण्ड के रोगों को दूर करता है।
- थॉयराइड के लिए लाभकारी है।

अर्धचन्द्रासन

विधि :

- उष्ट्रासन की स्थिति में घुटनों के बल खड़े हो जायें। दोनों हाथों को छाती पर रखें।
- श्वास अन्दर भरकर ग्रीवा एवं सिर को पीछे की ओर झुकाते हुए कमर को ऊपर की ओर तानें।
- जब सिर को पीछे झुकाते हुए एड़ियों पर टिका देते हैं, तब यह पूर्ण चन्द्रासन हो जाता है।

लाभ :

इसके सभी लाभ उष्ट्रासन के समान हैं। जो उष्ट्रासन नहीं कर सकते, वे इस आसन से लाभान्वित हो सकते हैं।

अर्धचन्द्रासन

त्रिकोणासन

विधि :

- दोनों पैरों के बीच में लगभग डेढ़ फुट का अन्तर रखते हुए सीधे खड़े हो जायें। दोनों हाथ कन्धों के समानान्तर पार्श्वभाग में खुले हुए हों।
- श्वास अन्दर भरते हुए बायें हाथ को सामने से लेते हुए बायें पंजे के पास भूमि पर टिका दें, अथवा हाथ को एड़ी के पास लगायें तथा दायें हाथ को ऊपर की तरफ उठाकर गर्दन को दायीं ओर घुमाते हुए दायें हाथ को देखें। फिर श्वास छोड़ते हुए पूर्व स्थिति में आकर इसी अभ्यास को दूसरी ओर से भी करें।

लाभ :

- कटिप्रदेश लचीला बनता है। पार्श्वभाग की चर्बी को कम करता है। पृष्ठांश की मांसपेशियों पर बल प
उनकी संरचना सुधरती है। छाती का विकास होता है।

सूर्य-नमस्कार

सूर्य-नमस्कार से सम्पूर्ण शरीर को आरोग्य, शक्ति एवं ऊर्जा की प्राप्ति होती है। इससे शरीर के सभी अंग-प्रत्यंगों में क्रियाशीलता आती है तथा शरीर की समस्त आन्तरिक ग्रन्थियों के अन्तःस्राव (हार्मोन्स) की प्रक्रिया का नियमन होता है। यदि सम्भव हो तो सूर्योदय के समय करें। सूर्य-नमस्कार की ११ से २१ बार तक यथाशक्ति आवृत्ति कर सकते हैं।

विधि:

१. सूर्याभिमुख खड़े होकर नमस्कार की स्थिति में हाथों को छाती के सामने रखें।

सूर्य-नमस्कार (१ एवं १२)

सूर्य-नमस्कार (२ एवं ११)
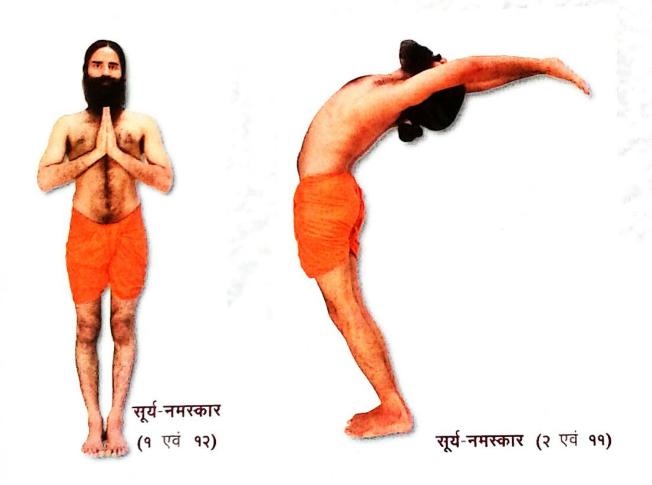
२. श्वास अन्दर भरकर सामने से हाथों को खोलते हुए पीछे की ओर ले जायें। दृष्टि आकाश की ओर रहे। कमर को भी यथाशक्ति पीछे की ओर झुकायें।

३. श्वास बाहर निकालकर हाथों को पीछे से सामने झुकाते हुए पैरों के पास जमीन पर टिका दें। यदि हो सके तो हथेलियों को भी भूमि से स्पर्श करें तथा सिर को घुटनों से लगाने का प्रयास करें।

सूर्य-नमस्कार (३ एवं १०)
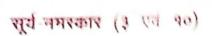
सूर्य-नमस्कार (४ एवं ९)
स्थिति ४ में दायाँ पैर आगे   स्थिति ९ में बायाँ पैर आगे

४. अब नीचे झुकते हुए हथेलियों को छाती के दोनों ओर टिकाकर रखें। बायाँ पैर उठाकर पीछे भुजंगासन की स्थिति में ले जायें। दायाँ पैर दोनों हाथों के बीच में रहे। घुटना छाती के सामने रहे तथा पैर की एड़ी भूमि पर टिकी हुई हो। दृष्टि आकाश की ओर हो, श्वास अन्दर भरकर रखें।

सूर्य-नमस्कार (५ एवं ८)
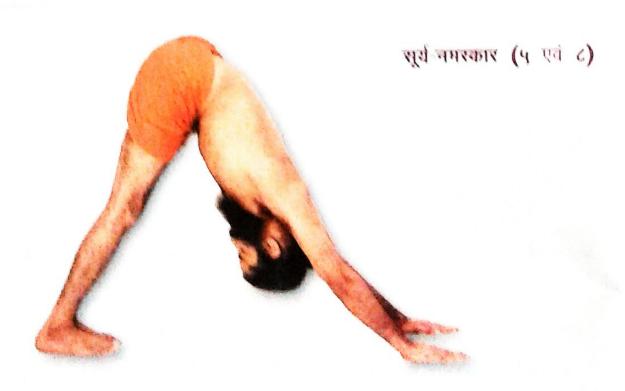
१०. विधि संख्या ३ की तरह।

११. विधि संख्या २ की तरह।

१२. विधि संख्या १ की तरह।

लाभ :

- सूर्य-नमस्कार एक पूर्ण व्यायाम है। इससे शरीर के सभी अंग-प्रत्यंग बलिष्ठ एवं नीरोग होते हैं।
- उदर, अन्त्र, आमाशय, अग्न्याशय, हृदय एवं फेफड़ों को स्वस्थ करता है।
- मेरुदण्ड एवं कमर को लचीला बनाकर वहाँ आई विकृति को दूर करता है।
- सम्पूर्ण शरीर में रक्त-संचार को सुचारु रूप से सम्पन्न करता है, इसलिए रक्त की अशुद्धि को भी दूर कर चर्मरोगों का नाश करता है।
- हाथ, पैर, भुजा, जंघा, कन्धा आदि सभी अंगों की मांसपेशियाँ पुष्ट एवं सुन्दर होती हैं।
- मानसिक शान्ति एवं बल, ओज तथा तेज की वृद्धि करता है।
- मधुमेह के लिए भी विशेष उपयोगी है।
- सूर्य-नमस्कार सम्पूर्ण शरीर को पूर्ण आरोग्य प्रदान करता है।

अन्य विविध आसन

शीर्षासन

विधिः

- धोती या किसी लम्बे वस्त्र की गोलाकार गद्दी बनायें। दोनों हाथों की अंगुलियों को आपस में डालकर कोहनी तक हाथ को जमीन पर टिकायें। गद्दी को हाथों के बीच रखें।
- सिर का अग्रभाग गद्दी पर एवं घुटने जमीन पर टिके हुए हों। अब शरीर का भार ग्रीवा एवं कोहनियों पर सन्तुलित करते हुए पैरों को भूमि के समानान्तर सीधा करें।
- अब एक घुटने को मोड़ते हुए ऊपर उठायें, उसके पश्चात् दूसरे घुटने को भी ऊपर उठाकर मोड़कर रखें।
- अब मुड़े हुए घुटनों को क्रमशः एक-एक करके ऊपर उठाने की चेष्टा करें। प्रारम्भ में शीघ्रता नहीं करनी चाहिए। धीरे-धीरे पैर सीधे होने लगेंगे। जब पैर सीधे हो जायें, तब आपस में मिलाकर प्रारम्भ में थोड़ा आगे की ओर झुकाकर रखें, नहीं तो पीछे की ओर गिरने का भय होता है। आँखे बन्द रहें, श्वास-प्रश्वास की गति सामान्य रहे।

शीर्षासन
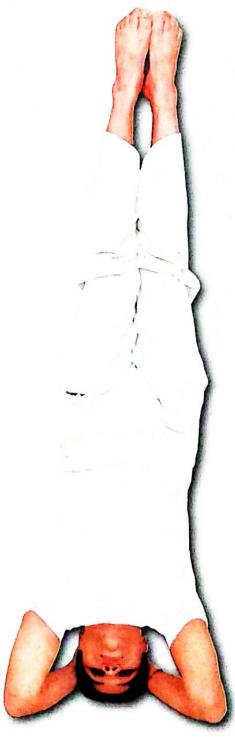
- जिस क्रम से पैर ऊपर उठे थे, उसी क्रम से उन्हें वापस पूर्व स्थिति में लाना चाहिए। अपनी प्रकृति के अनुकूल शीर्षासन के बाद शवासन करें या खड़े हो जायें, जिससे रक्त का प्रवाह जो मस्तिष्क की ओर हो रहा था, वह सामान्य हो जाये।

समय: यह आसन १५ सेकण्ड से आरम्भ करके आधे घण्टे तक कर सकते हैं। अधिक अभ्यास किसी के सान्निध्य में करें। सामान्य अवस्था में ५ से १० मिनट तक करना पर्याप्त है।

लाभ:

- यह आसन सब आसनों का राजा है। इससे शुद्ध रक्त मस्तिष्क को मिलता है, जिससे आँख, कान, नाक आदि को आरोग्य मिलता है। पिट्युटरी एवं पीनियल ग्लैण्ड को स्वस्थ करके मस्तिष्क को सक्रिय करता है। स्मृति, मेधा एवं धारणा-शक्ति का विकास करता है।
- पाचनतन्त्र, आमाशय, अन्त्र एवं यकृत् को सक्रिय कर जठराग्नि को प्रदीप्त करता है। अन्त्रवृद्धि, अन्त्रशोथ, हिस्टीरिया एवं अण्डकोष-वृद्धि, हार्निया, कब्ज, व्हेरिकोज व्हेन्स आदि रोगों को दूर करता है।
- थॉयरायड ग्लैण्ड को सक्रिय कर दुर्बलता और मोटापा दोनों को दूर करता है; क्योंकि थॉयरायड की क्रिया के अनियमित होने से ये दोनों व्याधियाँ होती हैं।
- थॉयरायड ग्लैण्ड को सक्रिय करके ब्रह्मचर्य को स्थिर करता है। स्वप्नदोष, प्रमेह, नपुंसकता, वन्ध्यापन आदि धातुरोगों को नष्ट करता है। मुखमण्डल पर ओज एवं तेज की वृद्धि करता है।
- असमय बालों का झड़ना एवं सफेद होना, इन दोनों ही व्याधियों को दूर करता है।

सावधानियाँ:

- जिनके कान बह रहे हों या कानों में पीड़ा हो, उन्हें यह आसन नहीं करना चाहिए।
- निकट दृष्टि का चश्मा हो या आँखों पर अधिक लालिमा हो, तब नहीं करें।
- हृदय एवं उच्च रक्तचाप तथा कमर-दर्द के रोगी इस आसन को नहीं करें।
- भारी व्यायाम करने के तुरन्त बाद शीर्षासन न करें। इस आसन को करते समय शरीर का तापमान सम होना चाहिए।
- जुकाम, नजला आदि होने पर भी इस आसन को नहीं करें।

एकपाद-ग्रीवासन

विधि:

दण्डासन में बैठकर बायें पैर को घुटने से मोड़कर एड़ी सामने अण्डकोश के समीप रखें। फिर दायें पैर को उठाकर सिर के पिछले भाग गर्दन पर दृढ़ता से स्थापित करें। अब दोनों हाथ सामने नमस्कार की मुद्रा में जोड़कर दृष्टि को सामने करके बैठें। डेढ़ या दो मिनट तक ऐसी स्थिति में बैठने का प्रयास करें। फिर पूर्व स्थिति में आकर पैर बदल करके भी इसका अभ्यास करें।

लाभ:

- इसके अभ्यास से स्कन्ध तथा वक्ष-स्थल बलवान् बनते हैं।
- पैरों के अवयव लचीले तथा शक्तिशाली बन जाते हैं। टाँगों की पेशियाँ मजबूत बनती हैं।
- उदर की अनेक गडबड़ियाँ मिट जाती हैं। मेद घट जाता है।

एकपाद-ग्रीवासन

सिद्धासन

विधि:

- दण्डासन में बैठकर बायें पैर को मोड़कर एड़ी को सीवनी पर (गुदा एवं उपस्थेन्द्रिय के मध्य भाग में) लगायें। दायें पैर की एड़ी को उपस्थेन्द्रिय के ऊपरवाले भाग पर स्थिर करें। बायें पैर के टखने पर दायें पैर का टखना होना चाहिए। पैरों के पंजे, जंघा और पिण्डली के मध्य रहें।
- घुटने जमीन पर टिके हुए हों। दोनों हाथ ज्ञानमुद्रा (तर्जनी एवं अंगुष्ठ के अग्रभाग को स्पर्श करके रखें, शेष तीन अंगुलियाँ सीधी रहें) की स्थिति में घुटने पर टिके हुए हों। मेरुदण्ड सीधा रहे। आँखें बन्द करके भ्रूमध्य में मन को एकाग्र करें।
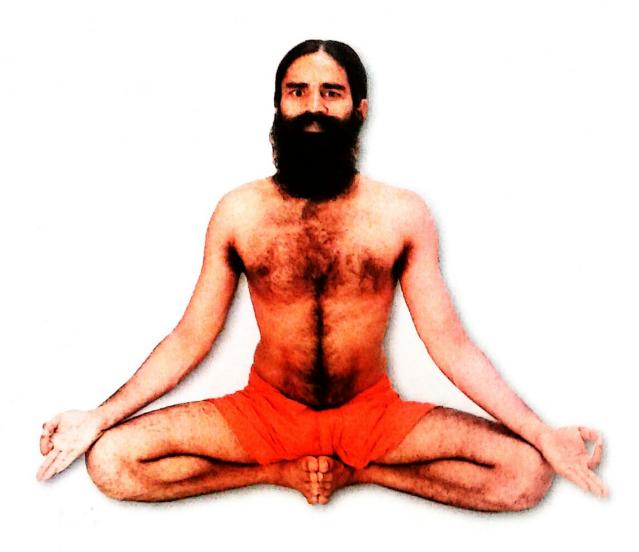
लाभ :

- सिद्धों द्वारा सेवित होने से इसका नाम सिद्धासन है। ब्रह्मचर्य की रक्षा करके ऊर्ध्वरेता बनाता है
- काम के वेग को शान्त कर मन की चंचलता दूर करता है। कुण्डलिनी-जागरण हेतु उत्तम आसन
- बवासीर तथा यौन रोगों के लिए लाभप्रद है।

कुक्कुटासन

कुक्कुटासन

विधि :

- पद्मासन में बैठकर दोनों हाथों को जंघा और पिण्डली के बीच डालकर भूमि पर टिकायें।
- श्वास अन्दर भरकर हथेलियों पर भार लेते हुए शरीर को कोहनियों तक ऊपर उठायें। थकने पर शनैः शनैः वापस आ जायें।

लाभ : हाथ एवं कन्धों की स्नायुएँ पुष्ट होती हैं।
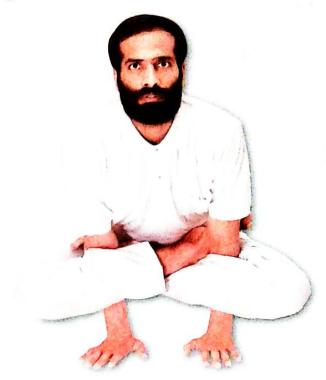
उत्तान कुक्कुटासन

उत्तान कुक्कुटासन

विधि :

- पद्मासन में बैठकर हाथों को सामने रखें।
- घुटनों को कोहनियों के ऊपर तथा काँख के नीचे भुजाओं पर स्थिर करके श्वास अन्दर भरकर हाथों पर भार सँभालते हुए ऊपर उठें।

लाभ : पूर्ववत्।

सुप्तगर्भासन

विधि:

- पद्मासन में बैठकर पीठ के बल लेट जायें। कुक्कुटासन की तरह हाथों को जंघा एवं पिण्डली के बीच से निकालें।

सुप्तगर्भासन

- हाथों को कमर के पीछे बाँधकर रखें। श्वास-प्रश्वास की स्थिति सहज रहेगी। इसे हाथों से ग्रीवा या कानों को पकड़ कर भी किया जा सकता है।

लाभ: हाथ, पैर, कमर एवं पेट के लिए उपयोगी है।

गर्भासन

विधि:
पद्मासन में बैठकर हाथों को जंघा और पिण्डली के बीच से निकालकर कानों को पकड़ें। शरीर का भार नितम्बों पर रहेगा।

लाभ: जठराग्नि को बढ़ाता है। सम्पूर्ण पाचन-तन्त्र के लिए उपयोगी आसन है।

गर्भासन

तोलांगुलासन

विधि:
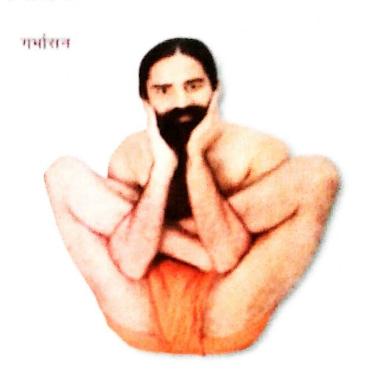
दण्डासन में बैठकर शरीर के भार को हाथों पर सन्तुलित करते हुए श्वास अन्दर भरकर नितम्ब सहित पूरे पैरों को भूमि पर से ऊपर उठायें।

लाभ: हाथ एवं पैरों की सम्पूर्ण स्नायुओं को अत्यधिक बल प्रदान करता है।

तोलांगुलासन
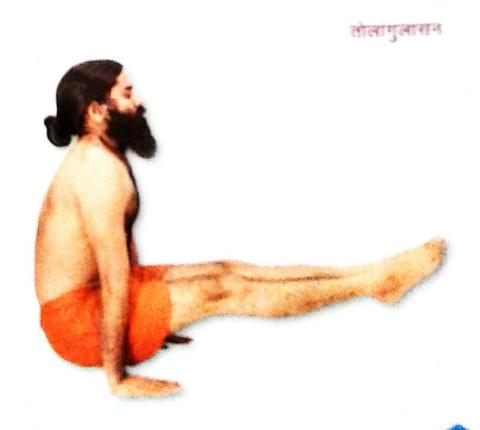
मयूर-आसन

विधि :

- दोनों हाथों को सामने मिलाकर अंगुलियों को पीछे की ओर करके पहले घुटनों के बल बैठें।
- श्वास अन्दर भरकर कोहनियों को नाभि के दोनों ओर लगाते हुए पैरों को धीरे-धीरे पीछे की ओर सीधा कर दें। पूरे शरीर का भार कोहनियों पर रहेगा। पूर्ण स्थिति में सिर एवं पैर समानान्तर उठे हुए हों।

लाभ :

- तिल्ली, यकृत, गुर्दे, अग्न्याशय एवं आमाशय सभी लाभान्वित होते हैं। मुख पर कान्ति आती है।
- मधुमेह के रोगियों के लिए लाभकारी है। कब्ज को दूर करता है।
- जठराग्नि को प्रदीप्त करता है।

पर्वतासन

विधि :

- पद्मासन में बैठकर घुटनों के सहारे सीधे खड़े हो जायें।
- दोनों हाथों को सिर के ऊपर उठाकर नमस्कार की मुद्रा में रखें।

लाभ : मन की एकाग्रता को बढ़ाता है।

पर्वतासन
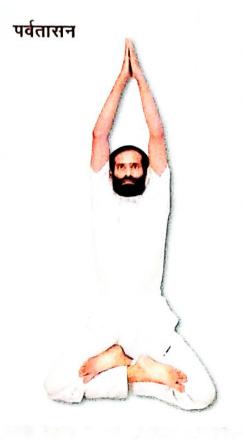
उत्कटासन

विधि :

पैरों के पंजे भूमि पर टिके हुए हों तथा एड़ियों के ऊपर नितम्ब टिकाकर बैठ जायें। दोनों हाथ घुटनों पर तथा घुटनों को फैलाकर एड़ियों के समानान्तर स्थिर करें।

लाभ : ब्रह्मचर्य के लिए उपयोगी है। बवासीर की निवृत्ति करता है।

उत्कटासन
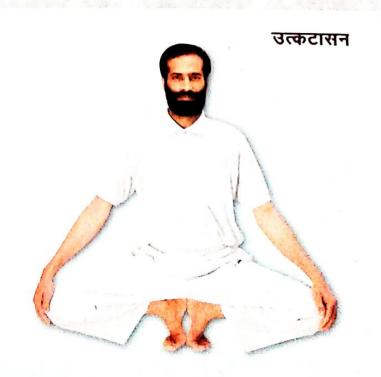
सिंहासन

विधि :

- यदि सम्भव हो तो सूर्याभिमुख हो वज्रासन में बैठकर घुटनों को थोड़ा खोलकर रखें। हाथों की अंगुलियाँ पीछे की ओर करके पैरों के बीच सीधा रखें।

- श्वास अन्दर भरकर जिह्वा को बाहर निकालिए। भ्रूमध्य में देखते हुए श्वास को बाहर निकालते हुए सिंहवत गर्जना करें। इस प्रकार ३-४ बार करना चाहिए।

- सिंहासन करने के पश्चात् गले से लार छोड़ते हुए हल्के हाथ से गले की मालिश करें, इससे गले में खराश नहीं होती।

सिंहासन
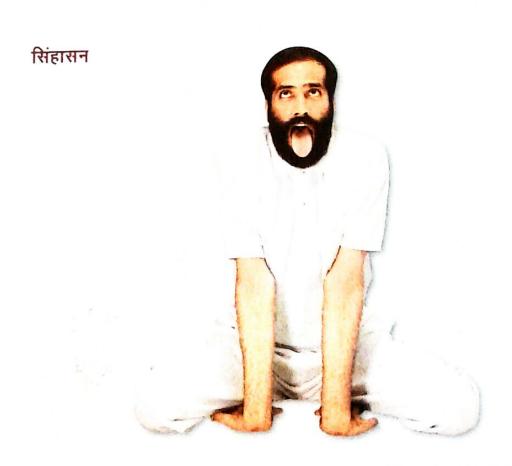
लाभ :

- टान्सिल, थॉयरायड एवं अन्य गला-सम्बन्धी रोगों में उपयोगी है।
- कान-रोग एवं अस्पष्ट उच्चारण में लाभकारी है।
- जो बच्चे तुतलाकर बोलते हैं, उनके लिए महत्त्वपूर्ण है।

मार्जारासन

विधि :

- दोनों हाथों की हथेलियों एवं घुटनों को भूमि पर टिकायें।

मार्जारासन (प्रथम स्थिति)

- अब श्वास अन्दर भरकर छाती एवं सिर को ऊपर उठायें, कमर नीचे की ओर झुकी हुई हो। थोड़ी देर इस स्थिति में रहकर श्वास बाहर छोड़ते हुए पीठ को ऊपर उठायें तथा सिर को नीचे झुकायें। इस प्रकार ५-६ चक्र अभ्यास करें।

लाभ :

- कटि-पीड़ा एवं गुदभ्रंश में लाभकारी है। फेफड़ों को बलवान् बनाता है।
- गर्भाशय के बाहर निकलने के रोग को दूर करता है।

मार्जारासन (द्वितीय स्थिति)
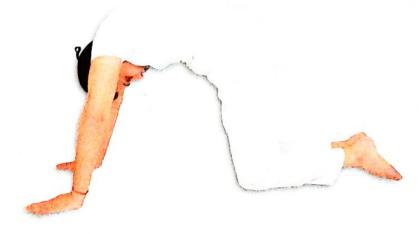
प्रसृतहस्त वृश्चिकासन

विधि:
जमीन पर पेट के बल लेटकर दोनों पैर शक्तिपूर्वक ऊपर लाकर और मोड़कर सिर पर रखें। यह आसन बहुत कठिन है। शुरुआत में कठिनाई होती है।

लाभ: पूर्ववत्।

प्रसृतहस्त वृश्चिकासन
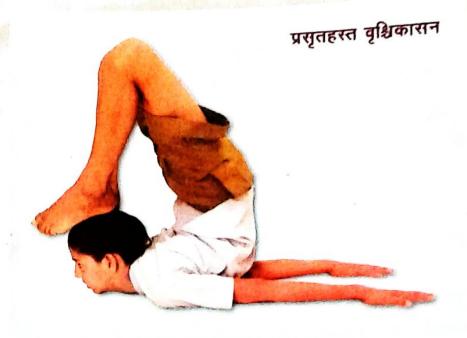
पादांगुष्ठासन

विधि:

- दायें पैर की एड़ी को सीवनी (मूत्रेन्द्रिय एवं गुदा के बीचवाले भाग में) से लगायें।
- बायें पैर को दायीं जंघा के ऊपर रखें। अब दोनों हाथों को दोनों ओर टिकाकर शरीर का सन्तुलन एड़ी एवं पंजे पर बनाते हुए हाथों को उठाकर नमस्कार की स्थिति में लायें। इस स्थिति में यथेष्ट रुकें। श्वास-प्रश्वास की गति सामान्य हो।
- एक पैर से करने के पश्चात् दूसरे पैर से इसी प्रकार करें।

लाभ: ब्रह्मचर्य के लिए लाभकारी है। दीर्घकाल तक अभ्यास करने पर कुण्डलिनी जागरित होती है और वीर्य ऊर्ध्वगामी होता है। शरीर में बल, बुद्धि, ओज एवं तेज की वृद्धि होती है।

पादांगुष्ठासन

ब्रह्मचर्यासन

ब्रह्मचर्यासन

विधि :

- वज्रासन में बैठकर पंजों को हाथों की सहायता से बाहर की ओर मोड़ें। एड़ियाँ अन्दर की ओर दोनों नितम्बों के पास लगी हुई एवं पंजे बाहर की ओर हों।
- दोनों घुटने मिले हुए हों, हाथों को घुटनों पर सीधा रखें। कमर सीधी तथा श्वास-प्रश्वास की गति सामान्य रहे। यथाशक्ति ५ मिनट से आधा घण्टे तक करें।

लाभ : यह आसन ब्रह्मचर्य के लिए यथानाम तथा गुण है। समस्त प्रकार के धातुरोग, स्वप्नदोष, प्रमेह, मधुमेह आदि में पूर्ण लाभप्रद है।
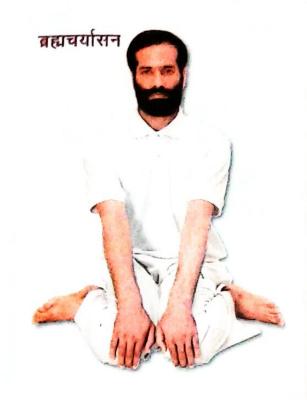
गोरक्षासन

विधि :

- दोनों पैरों की एड़ियों तथा पंजों को आपस में मिलाकर सामने रखें।
- अब सीवनी को एड़ियों पर रखते हुए उसपर बैठ जायें। दोनों घुटने भूमि पर टिके हुए हों। हाथों को ज्ञानमुद्रा की स्थिति में घुटनों पर रखें।

लाभ :

गोरक्षासन

- यह आसन ब्रह्मचर्यासन का पूरक है। पूर्व आसन के अभ्यास के पश्चात् इस आसन को करने से पैरों की स्थिति विपरीत हो जाती है, जिससे मांसपेशियों में रक्त-संचार ठीक रूप से होता है और वे स्वस्थ होती हैं।
- मूलबन्ध के स्वाभाविक रूप से लगने से यह आसन ब्रह्मचर्य में पूर्ण सहायक है। इन्द्रियों की चंचलता समाप्त कर मन में शान्ति प्रदान करता है। इसलिए इसका नाम गोरक्षासन है।
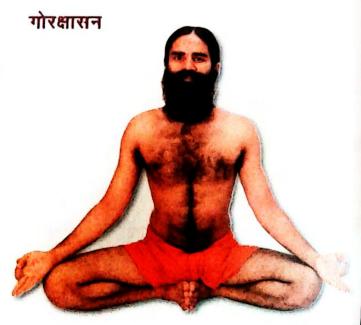
आकर्णधनुष्टंकारासन

विधि:

- दण्डासन की स्थिति में बैठें। दायें पैर को मोड़कर बायें पैर पर रखें।
- बायें हाथ से दायें पैर का अंगूठा तथा दायें हाथ से बायें पैर का अंगूठा पकड़ें।
- श्वास अन्दर भरकर दायें पैर को बायें कान के पास लायें। कुछ समय इस स्थिति में रुककर पुनः दण्डासन की स्थिति में वापस आ जायें। इसी तरह दूसरे पैर से करें।

आकर्णधनुष्टंकारासन

लाभ:

- हाथ-पैर के जोड़ों के दर्द को दूर करता है तथा उनकी ग्रन्थियों को पुष्ट करता है।
- कम्पवात में भी यह आसन लाभदायक है।

भूनमनासन

विधि:

- दण्डासन में बैठकर पैरों को दोनों ओर पार्श्वभागों में जितना फैला सकते हैं, फैलायें।
- दोनों हाथों से पैरों के अंगूठों को पकड़कर श्वास बाहर निकालते हुए छाती एवं पेट को भूमि पर स्पर्श करें। ठोड़ी भी भूमि पर लगी हुई रहे। इस स्थिति में कुछ देर यथाशक्ति रहकर विधि क्रमांक एक की स्थिति में आ जायें।

भूनमनासन

लाभ : जंघा, टाँगें, कमर, पीठ और उदर निर्दोष हो जाते हैं और वीर्य स्थिर होता है।

स्कन्धपादासन

विधि :

- दण्डासन में बैठकर बायें पैर को उठाकर हाथों की सहायता से गर्दन पर रखें।
- हाथों को नमस्कार की स्थिति में छाती के सामने रखें। कमर और सिर सीधा रखें।
- इसी प्रकार पैर बदलकर यह आसन करें।

लाभ :

हाथ, पैर एवं ग्रीवा के स्नायुओं को शक्ति प्रदान करता है।

स्कन्धपादासन

द्विपादग्रीवासन

विधि:

- दण्डासन की स्थिति में बैठकर पैरों को एक-एक करके ग्रीवा पर रखें।
- नितम्बों पर शरीर के भार को सन्तुलित रखते हुए हाथों को नमस्कार की स्थिति में लायें। इस स्थिति में यथाशक्ति रुकने का प्रयास करें।

द्विपादग्रीवासन

लाभ: स्कन्धपादासन के समान।
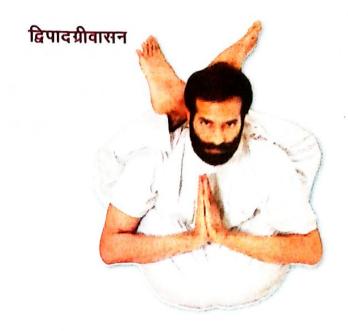
बकासन

विधि:

- दोनों हाथों की हथेलियों को भूमि पर स्थिर करके घुटनों को कोहनियों से ऊपर भुजाओं पर स्थिर करें।
- श्वास अन्दर भरकर शरीर के भार को हथेलियों पर सँभालते हुए धीरे-धीरे पैरों को भूमि से ऊपर उठाने का यत्न करें। अभ्यास होने पर बगुले जैसी स्थिति हो जायेगी।

बकासन

लाभ:

हाथों की स्नायुओं को विशेष बल एवं आरोग्य मिलता है। मुख की कान्ति बढ़ती है।
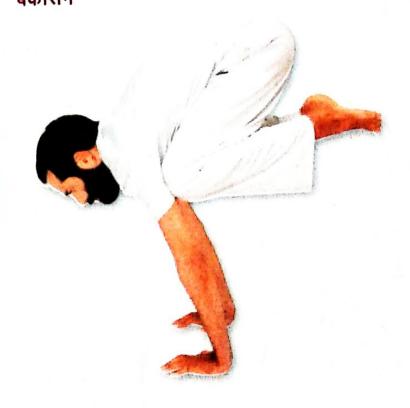
उपधानासन (तकियासन)

विधि :

- दण्डासन में बैठकर बायें पैर को मोड़कर हाथों की सहायता से ग्रीवा पर रखें।
- दायें हाथ की कोहनी को भूमि पर टिकाकर हाथ को सिर पर लगायें, भूमि पर लेट जायें।
- दायाँ पैर सीधा भूमि पर टिका हुआ हो। बायें हाथ को सीधा करके बायें पैर की जंघा पर रखें।
- इसी प्रकार पैर बदलकर दूसरे पैर से यह आसन्न करें।

उपधानासन (तकियासन)

लाभ : हाथ, पैर एवं गर्दन की स्नायुओं को शक्ति प्रदान करता है।

हस्तपादांगुष्ठासन

विधि :

- सीधे खडे होकर बायें पैर को उठाकर दायें पैर की जंघा पर रखें एवं दायें हाथ से पैर का अंगूठा पकड़ें।
- बाये हाथ को कटि पर रखें। हाथ का अंगूठा पीठ की ओर तथा अंगुलियाँ पेट की ओर हों।
- दाये पैर पर शरीर का भार सँभालते हुए बायें पैर को (अगूठे को दायें हाथ से पकड़े हुए) सामने सीधा कर दें। पैर पकडा हुआ हाथ भी सीधा हो जायेगा। एक पैर से करने के पश्चात् दूसरे पैर से करें।

हस्तपादांगुष्ठासन

लाभ : हाथ एव पैर की बीमारियों को दूर करता है। जिनको कम्पवात रहता है, उनके लिए उत्तम अभ्यास है।

ध्रुवासन

ध्रुवासन

विधि:

- सीधे खड़े होकर दायें पैर को उठाकर बायीं जंघा पर इस प्रकार रखें कि पैर का पंजा नीचे की ओर तथा एड़ी जंघा के मूल में लगी हुई हो।
- दोनों हाथों को नमस्कार की स्थिति में सामने रखें। इस स्थिति में यथाशक्ति बने रहने के पश्चात् इसी प्रकार दूसरे पैर से अभ्यास करें।

लाभ: मन की चंचलता को दूर करता है। स्नायु-मण्डल का विकास कर स्थिरता प्रदान करता है।

कोणासन

कोणासन

विधि:

- पैरों को लगभग डेढ़-दो फीट के अन्तर पर रखते हुए सीधे खड़े हो जायें।
- श्वास अन्दर भरते हुए दायें हाथ से बायें पैर के पंजे का स्पर्श करें तथा बायें हाथ को ऊपर उठाकर दायीं ओर यथाशक्ति झुकायें। एड़ी-पंजे भूमि पर टिके हुए हों। शरीर को केवल पार्श्वभाग से मोड़ना है, आगे एवं पीछे की ओर होते हुए नहीं झुकना चाहिए। इस स्थिति में ४ से ६ सेकण्ड तक रहें। इसे ४ से ६ बार करें।
- इसी प्रकार हाथ बदलकर बायें हाथ से दायें पैर के पंजे का स्पर्श करें।

लाभ: कमर, पसलियों के दर्द तथा फेफड़ों की कमजोरी आदि में विशेष लाभदायक है। महिलाओं के लिए भी उपयोगी अभ्यास है। कमर की चर्बी को कम करके कमर को सुडौल बनाता है।

गरुडासन

गरुडासन

विधि:

सीधे खड़े होकर दायें पैर को सामने से लेते हुए बायें पैर से लपेटें। दोनों हाथों को भी इसी तरह लपेटते हुए नमस्कार की मुद्रा में ले आयें। एक ओर से करने के पश्चात् दूसरी ओर से करें।

लाभ:

- अण्डकोष-वृद्धि, पौरुषग्रन्थि एवं गुर्दे के रोगों में यह आसन विशेष लाभदायक है।
- हाथ-पैर में दर्द या अन्य कोई भी विकृति हो तो उसे दूर करता है।
- मूत्र-विकारों को दूर करता है।

वृक्षासन

विधि:

- खड़े होकर दोनों हाथों को सामने भूमि पर लगभग ६ इंच का अन्तर रखते हुए टिकायें।
- शरीर का भार हाथों पर लेते हुए धीरे-धीरे पैरों को भूमि से उठाकर आकाश में वृक्षवत् स्थिर कर दें।

लाभ:

- यह आसन शरीर में बल, कान्ति एवं वीर्य की वृद्धि करता है।
- नेत्र-विकारों, धातु-विकारों एवं कफ-विकारों को दूर करता है। भुजाओं को सुडौल एवं सुन्दर बनाता है।
- हृदय एवं फेफड़ों में पर्याप्त मात्रा में रक्त पहुँचाकर उनको स्वस्थ बनाता है।

वृक्षासन

ताड़ासन

ताड़ासन

विधि :

पूर्ववत् खड़े होकर दोनों हाथों को पार्श्वभाग से दीर्घ श्वास भरते हुए ऊपर उठायें। जैसे-जैसे हाथ ऊपर उठें, वैसे-वैसे ही पैर की एड़ियाँ भी उठी रहनी चाहिए। शरीर का भार पंजों पर रहेगा एवं शरीर ऊपर की ओर पूरी तरह से तना होगा।

लाभ :

- दीर्घ श्वसन से फुफ्फुस सुदृढ़ एवं विस्तृत होते हैं।
- यह आसन कद की वृद्धि के लिए सर्वोत्तम है। इससे समस्त शरीर के स्नायु सक्रिय एवं विकसित होते हैं।

पक्ष्यासन

पक्ष्यासन

विधि :

- सीधे खड़े होकर बायें पैर को ग्रीवा एवं स्कन्ध पर रखें।
- हाथों को दोनों ओर समानान्तर फैलायें। दायाँ पाँव बिलकुल सीधा हो। हाथों को नमस्कार की मुद्रा में सामने रखें।
- बायें पैर से करने के बाद इसी प्रकार दूसरे दायें पैर से यह आसन करें।

लाभ : यह आसन शरीर में हल्कापन एवं स्फूर्ति देनेवाला है। जंघा की स्नायुओं का विकास करता है। मस्तिष्क-विकारों को दूर करता है।

पादहस्तासन

पादहस्तासन

विधि :
सीधे खड़े होकर श्वास अन्दर भरते हुए हाथों को ऊपर उठाते हुए सामने झुक जायें। सिर घुटनों में लगा दें। हाथ पीछे पिण्डलियों के पास रहेंगे।

लाभ : कमर एवं पेट को स्वस्थ बनाता है। कद-वृद्धि के लिए अति लाभप्रद है।

नटराजासन

विधि :

- पूर्ववत् खड़े होकर दायें पैर को पीछे की ओर मोड़ें। बायाँ हाथ कन्धे के ऊपर से लेकर दायें पैर का अंगूठा पकड़ें।
- बायाँ हाथ सामने सीधा ऊपर की ओर उठा हुआ होगा। इस पैर से करने के पश्चात् दूसरे पैर से इसी प्रकार करें।

लाभ : हाथ एवं पैर की स्नायुओं का विकास करता है। स्नायु मण्डल को सुदृढ़ बनाता है।

नटराजासन

वातायनासन

विधि:

- पूर्ववत् खड़े होकर बायें पैर को मोड़कर दायीं जंघा के मूल पर इस प्रकार रखें कि पंजा जंघे पर तथा एड़ी मूत्रेन्द्रिय के मूल में लगी हुई हो।
- दायाँ पैर मोड़ते हुए बायें पैर का घुटना भूमि पर टिकाकर स्थिर करें। हाथों की स्थिति नमस्कार की मुद्रा में हो। इसी प्रकार दूसरे पैर से करें।

वातायनासन

लाभ: घुटने के विकारों में लाभप्रद है। शरीर में हल्कापन आता है। जंघाओं में जल की वृद्धि करता है। हर्नियावालों के लिए यह उपयोगी माना जाता है।

हठयोग एवं षट्कर्म

हठयोग के आदि प्रणेता भगवान् शिव माने जाते हैं। उन्हीं की परम्परा में स्वामी गोरक्षनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, मीननाथ, चौरंगीनाथ, स्वात्माराम आदि से लेकर भर्तृहरि एवं गोपीचन्द पर्यन्त नाथों ने इस परम्परा को जीवित रखा है। हठयोग से हम शरीर को शुद्ध, स्वस्थ एवं निर्मल बनाकर, राजयोग का पात्र बनाते हैं, जैसा कि स्वयं हठयोगप्रदीपिकाकार ने कहा है- **'केवलं राजयोगाय हठविद्योपदिश्यते।'** केवल राजयोग में प्रवेश के लिए ही हठयोग का उपदेश किया जाता है; क्योंकि राजयोग में यम-नियमों के द्वारा अन्तःकरण को पवित्र कर ध्यान एवं समाधि में प्रवेश का क्रम है। परन्तु यदि हम अस्वस्थ हैं, हमारी चेतना ही सुप्त है तो ध्यान एवं समाधि की स्थिति प्राप्त होना दुर्लभ है। इसीलिए 'हठयोगप्रदीपिका' में आगे कहा है :

हठं विना राजयोगं राजयोगं विना हठः।
न सिध्यति ततो युग्मनिष्पत्त्यर्थं समभ्यसेत्।।

(हठयोग : २.७६)

हठयोग के बिना राजयोग सिद्ध नहीं होता तथा राजयोग के बिना हठयोग अपूर्ण है। इसलिए साधक को हठयोग एवं राजयोग दोनों का समन्वयपूर्वक सतत अभ्यास करना चाहिए।

सामान्यतः लोग मानते हैं कि हठयोग का अर्थ हठ, अर्थात् शक्ति का अतिक्रमण करके जिस योग को किया जाये, वह हठयोग है। किन्तु यह अर्थ बिल्कुल विपरीत है। शास्त्रों में हठयोग की परिभाषा की गई है :

हकारः कीर्तितः सूर्यष्ठकारः चन्द्र उच्यते।
सूर्यचन्द्रमसोर्योगाद् हठयोगो निगद्यते।।

हकार सूर्यनाड़ी का द्योतक है तथा ठकार चन्द्रनाड़ी का प्रतीक है। सूर्य एवं चन्द्र नाड़ी के योग से हठयोग शब्द निष्पन्न होता है। सूर्य और चन्द नाड़ी हमारे शरीर में ही विराजमान हैं। इन्हीं के द्वारा हम जीवनी-शक्ति प्राप्त करते हैं। यहाँ इतना ही लिखना पर्याप्त है कि व्यक्ति में दो प्रकार की ही शक्तियाँ हैं। एक अग्नि-शक्ति-बल, पराक्रम, शौर्य, वीर्य तथा दूसरी सोम-शक्ति- श्रद्धा, शान्ति, धैर्य, सौहार्द, प्रेम, सहानुभूति। इन दोनों से व्यक्ति के सभी व्यवहार सिद्ध होते हैं। सोम-शक्ति एवं अग्नि-शक्ति के संयोग से एक दैवी शक्ति को निष्पन्न करना यौगिक कार्य है। इन्हीं सूर्य-चन्द नाड़ी से सम्बन्धित एक विज्ञान है, जिसे 'नाड़ीविज्ञान' या 'स्वरविज्ञान' कहते हैं, जिसका यहाँ संक्षिप्त वर्णन किया जाता है।

नाड़ी या स्वरज्ञान :

'यथा ब्रह्माण्डे तथा पिण्डे' के अनुसार बाह्य जगत् की सम्पूर्ण शक्तियाँ हमारे अन्दर ही हैं। हमें बाहर से शक्ति प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं, हमें आवश्यकता है अपने अन्दर विद्यमान शक्तियों को पहचानने और उनका सम्यक् उपयोग करने की। बाह्य जगत् के जीवन के आधार सूर्य और चन्द्र हैं। ये दोनों ही संसार-चक्र

का संचालन करते हैं। ये दोनों सोम-शक्ति और अग्नि-शक्ति के प्रतिरूप हैं। ठीक उसी प्रकार हमारे शरीर में सूर्य और चन्द्र स्वर हैं। चन्द्रस्वर सोम का प्रतिनिधित्व करता है। इससे व्यक्ति में सात्त्विकता, सौम्यता, शक्ति, आनन्द एवं इच्छाशक्ति जाग्रत् होती है। सूर्यस्वर शौर्य, वीर्य, पराक्रम एवं इच्छाओं की पूर्ति की क्षमता से परिपूर्ण है। इन दोनों शक्तियों के सम और सन्तुलित होने से तीसरी शक्ति का जागरण या उद्‌भव होता है, जो इन दोनों शक्तियों के मध्य में प्रतिष्ठित है, इसे सुषुम्णा कहते हैं। इन्हीं स्वरों को हठयोग में गंगा, यमुना और सरस्वती नाम से भी जाना जाता है।

इडा भगवती गंगा, पिंगला यमुना नदी।
इडापिंगलयोर्मध्ये बालरंडा च कुंडली।।

(हठयोग : ३.११०)

इड़ा, अर्थात् वाम नाड़ी भगवती गंगा है। पिंगला, अर्थात् दक्षिण नाड़ी यमुना नदी है। इन इड़ा और पिंगला के मध्य सुषुम्णा नाड़ी है, जिसे बालरंडा, सरस्वती एवं कुंडली नाम से भी जाना जाता है। सन्त कबीरदासजी के शब्दों में :

चांद-सूरज दो बने मसालची, सूरत-सुहागिनी नाच रही।
इड़ा पिंगला ताना भरनी, सुखमन तार से बीनी चदरिया।
घट में गंगा, घट में यमुना, घट में ठाकुरद्वारा।

अब हम हठयोग के अन्तर्गत षट्‌कर्म के विषय में कुछ प्रकाश डालेंगे।

षट्‌कर्म :

शरीर की शुद्धि एवं राजयोग में प्रवेशार्थ अपने शिष्यों को ऋषियों ने षट्‌कर्म की शिक्षा का उपदेश किया। ये क्रियाएँ मानव-शरीर का कायाकल्प करके उसे रोगमुक्त, दीर्घायु, स्वस्थ, पुष्ट एवं कान्तिमय बनाती हैं।

षट्‌कर्म निर्गतस्थौल्यः कफदोषमलाधिकः।
प्राणायामं ततः कुर्यादनायासेन सिध्यति।।

षट्‌कर्म की ये क्रियाएँ स्थूल शरीर को शुद्ध करती हुई सूक्ष्म शरीर के शुद्धीकरण में भी अत्यन्त सहायक हैं। इन क्रियाओं के अभ्यास से बीस प्रकार के कफरोग, सभी वातरोग, पित्तरोग, कुष्ठ रोग, उदर रोग, फुफ्फुस-विकार, हृदय एवं वृक्क की विकृतियाँ दूर होती हैं। इसलिए सर्वजनहिताय इस ऋषिप्रोक्त षट्‌कर्म का संक्षेप से वर्णन करते हैं।

धौतिर्वस्तिस्तथा नेतिस्त्राटकं नौलिकं तथा।
कपालभातिश्चैतानि षट् कर्माणि प्रचक्षते।।

(हठयोग : २.२२)

धौतिर्वस्तिस्तथा नेतिः नौलिकस्त्राटकस्तथा।
कपालभातिश्चैतानि षट् कर्माणि समाचरेत्॥

(घेरण्डसंहिता)

धौति, बस्ति, नेति, त्राटक, नौली तथा कपालभाति– इन छह कर्मों का योगमार्गानुगामियों के लिए उपदेश किया गया है। योगाकांक्षी को इनका सतत अभ्यास करना चाहिए। इनका विवेचन यहाँ किया जा रहा है।

१. नेति :

नासिका द्वारा भिन्न-भिन्न द्रव्यों को ग्रहण करना नेति कहलाता है।

नेति के प्रकार :

नेति के मुख्यतः पाँच प्रकार हैं– (क) जलनेति (ख) सूत्रनेति (ग) घृतनेति (घ) तेलनेति और (ङ) दुग्धनेति।

जलनेति

(क) जलनेति :

विधि : एक किलो पानी में लगभग १० ग्राम सेंधा नमक डालकर गुनगुना गर्म करके नेति करनेवाले लोटे में भर लें। प्रातः काल का समय नेति के लिए उपयुक्त है। रोगविशेष में दोनों समय भी कर सकते हैं। लोटे की नली को दायीं नासिका में लगाकर बायीं ओर की नासिका को थोड़ा नीचे रखें। मुख को थोड़ा खोलकर श्वास-प्रश्वास की प्रक्रिया मुख से ही करें। बायीं नासिका से जल अपने-आप बाहर निकलने लगेगा। इसी प्रकार दूसरी नासिका से करें। कफरोग न हो तो, धीरे-धीरे नमक-रहित ठण्डे जल से अभ्यास करना चाहिए। जिनको नजला जुकाम हो, उनको नमकयुक्त गर्म जल से यह क्रिया करनी चाहिए। जिनको कफरोग नहीं हैं, उनको गुनगुने जल से नेति आरम्भ करके धीरे-धीरे सामान्य जल से करनी चाहिए। नेति-क्रिया से सर्दी-जुकाम ठीक हो जाते हैं, पर कुछ लोगों को नेति करने से ही सर्दी-जुकाम हो जाते हैं। नेति करने के बाद कपालभाति
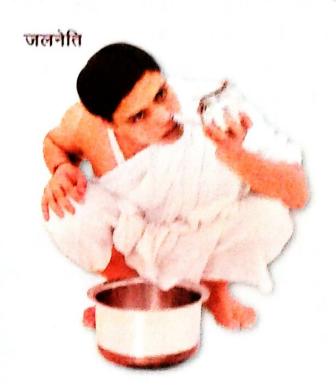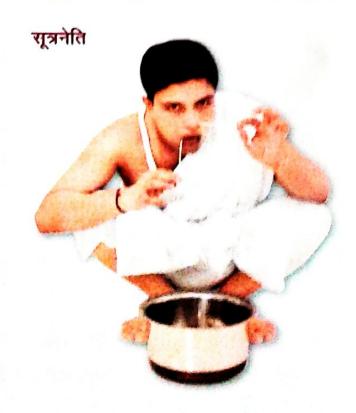
सूत्रनेति

क्रिया भी करनी चाहिए, ताकि अन्दर कोटरों में रुका और भर जानेवाला पानी निकल सके, फिर सर्दी-जुकाम नहीं होंगे।

(ख) सूत्रनेति :

विधि : सूत्र से बनी हुई एक रस्सी, जिसे सूत्रनेति कहा जाता है, से यह क्रिया की जाती है। सूत्रनेति को नासिका में डालने से पहले जल में भिगो देना चाहिए। भिगोकर थोड़ा वृत्ताकार में जहाँ सूत्रनेति पर मोम लगा रहता है, वहाँ से मोड़ना चाहिए, जिससे नेति आसानी से नासाद्वार में प्रविष्ट हो जाये। अब दायीं नासिका में शनैः-शनैः नेति को डालें। मुख में आने पर हाथ की सहायता से धीरे-धीरे बाहर निकाल लें।

टिप्पणी : सूत्रनेति के अभाव में ४ से ५ नम्बर के कैथेटर से भी सूत्रनेति कर सकते हैं। सूत्रनेति करने से नासिका एवं गले में एक विशेष प्रकार की मीठी-मीठी पीड़ा का अनुभव होने लगता है। इसलिए इसके पश्चात् घृतनेति या तेलनेति करनी चाहिए।

(ग) घृतनेति आदि :

विधि : कुर्सी पर बैठकर अथवा तख्त या चारपाई पर लेटकर सिर को थोड़ा पीछे की ओर लटकायें। अब ड्रॉपर या छोटे चम्मच की सहायता से नासिकाओं में गुनगुने घी की ८ से १० बूँद डालिए। इसी प्रकार तेलनेति होती है। नासिका से दुग्धपान करना ही दुग्धनेति है। जलनेति के अभ्यास में परिपूर्ण होने पर दुग्धनेति की जाती है। दुग्धनेति करते समय जलनेति की तरह मुख को खोलकर दूध को बाहर नहीं निकालते, बल्कि दूध को धीरे-धीरे पी जाते हैं।

लाभ : 'हठयोगप्रदीपिका' में नेति को कपाल का शोधन करनेवाली, नेत्रज्योतिवर्धक, गले के ऊपर के समस्त रोगों को शीघ्र दूर करनेवाली कहा है :

कपालशोधनी चैव दिव्यदृष्टिप्रदायिनी।
जत्रूर्ध्वजातरोगौघं नेतिराशु निहन्ति च।।

नजला-जुकाम एवं अन्य कफरोगों को नेति अवश्य दूर करती है। नेत्र-विकार, बालों का सफेद होना, सिर-दर्द आदि बीमारियों में नेति अत्यधिक लाभप्रद है। नेति का उद्देश्य नासिका की शुद्धि ही नहीं अपितु बाह्य वातावरण के प्रदूषण, धूल के कण, धुआँ, उष्णता, शीतलता, रोगाणु एवं कीटाणुओं से श्लेष्मा-झिल्ली की रक्षा कर उसको सक्षम बनाना है। कुछ व्यक्तियों की श्लेष्मा-झिल्ली अत्यन्त संवेदनशील होती है, जो तुरन्त बाह्य वातावरण से प्रभावित हो जाती है, जिसे 'एलर्जी' कहते हैं। नेति झिल्ली की संवेदनशीलता को कम करके इन

समस्त रोगों की निवृत्ति करती है। कुछ व्यक्तियों को नासिका में नासांकुर बढ़ जाता है। उस स्थिति में नेति से इस साइनस रोग को भी, इसकी प्रारम्भिक अवस्था में दूर किया जा सकता है।

२. धौति : आमाशय के शुद्धीकरण के लिए धौति क्रिया होती है। धौति का अर्थ है- धोना। इसके सामान्यतया चार भेद हैं– वमनधौति, गजकरणी, वस्त्रधौति, दण्डधौति।

(क) वमनधौति :

विधि : प्रातःकाल शौचादि से निवृत्त होकर यह क्रिया करनी चाहिए। क्रिया के लिए १-२ किलो गुनगुने जल में थोड़ा नमक डालकर जितना सम्भव हो, उतना प्रयत्नपूर्वक पानी पियें। फिर ९० डिग्री पर झुककर बायें हाथ की बीच की दो अंगुलियों को मुख में डालकर गले से स्पर्श करें, इससे वमन होकर पानी बाहर निकल जाता है। इस प्रकार गले में अंगुलियों के स्पर्श से पूरा पानी बाहर निकाल दें। जिनके नेत्र में अधिक लाली रहती है, उनको यह क्रिया बलपूर्वक नहीं करनी चाहिए। अधिक नीचे की ओर भी नहीं झुकना चाहिए तथा पैरों के पास में रखना चाहिए। इस क्रिया को 'बाधी क्रिया' भी कहते हैं।

लाभ : वमनधौति से आमाशय में स्थित कफ, पित्त एवं बिना पचा हुआ अन्न आदि बाहर निकल जाता है। जिनको कफ रोग, श्वास, दमा एवं अम्लपित्त हों, उन्हें यह क्रिया करनी चाहिए। बाद में जैसे-जैसे रोग का वेग कम होता जाय, इसको भी कम करते जायें। ज्वर में भी वमनधौति से प्रकुपित पित्त बाहर निकल आता है एवं प्रस्वेद आकर

ज्वर की निवृत्ति होती है। सिर में चक्कर आना आदि विकार शान्त होते हैं। इस क्रिया को सामान्यतया सप्ताह में एक बार किया जाना चाहिए।

(ख) गजकरणी या कुंजरक्रिया :

वमनधौति और गजकरणी में इतना ही अन्तर है कि पहली क्रिया में रुक-रुककर पानी बाहर आता है, जबकि गजकरणी में जल एक साथ बाहर निकलता है। गज या कुंजर हाथी को कहते हैं। जैसे हाथी सूँड में पानी भरकर उसे फव्वारे की तरह बाहर फेंक देता है, वैसी ही यह क्रिया होने से इसे 'गजकरणी' कहते हैं।

विधि: जितना पी सकते है, जल पियें। जल पीकर ९० डिग्री पर कमर को झुकायें। गले, मुख एवं कण्ठ को थोड़ा संकुचित करके उज्जायी जैसे श्वास लें या जैसे पानी पीते हैं, वैसे ही घूँट-घूँट करते वायु को आमाशय में धकेलें। उदर को संकुचित करें। इससे आमाशय के संकुचित होने से पानी झरने की भाँति बाहर गिरने लगेगा। इसमें आमाशय पर बायें हाथ से दबाव भी डाल सकते हैं।

लाभ: पूर्ववत्।

(ग) वस्त्रधौति :

विधि: मलमल का एक २२ फीट लम्बा और चार अंगुल चौड़ा वस्त्र लें। उसको गोलाकार लपेटकर एक पात्र में ४ से ५ मिनट तक उबले हुए साफ पानी में छोड़ दें। उकड़ू बैठकर वस्त्रधौति के एक सिरे को जिह्वामूल पर रखें। अब धीरे-धीरे जैसे भोजन करते हैं, वैसे लार के साथ वस्त्र को निगलिए। बीच-बीच में थोड़ा-थोड़ा करके पानी भी पीते जायें। इससे आसानी से कपड़ा अन्दर चला जाता है। प्रारम्भ में वमन जैसा अनुभव होगा। जब वमन होने लगे, तो मुख बन्द कर लें। प्रारम्भ में ३-४ फीट कपड़ा अन्दर जायेगा। अभ्यास होने पर शनैः-शनैः पूरी धौति

निगल सकेंगे। धौति निगलने के बाद खड़े होकर २-३ बार उड्डीयान बन्ध और दक्षिण नौलि का संचालन करें। नौलिक्रिया के पश्चात् बैठकर धीरे-धीरे वस्त्र को बाहर निकाल दें। यदि बाहर निकालते समय वस्त्र बीच में ही अटक जाये तो थोड़ा निगलकर फिर बाहर निकालें। बाहर निकालकर ठीक प्रकार से साबुन आदि से धोकर सुखाकर रख लें।

सावधानियाँ :

- वस्त्रधौति निगलते समय उसे दाँतों से नहीं दबाना चाहिए।
- धौति निगलते हुए कम से कम एक फुट वस्त्र बाहर रखना चाहिए।
- वस्त्रधौति निगलना आरम्भ करने के पश्चात् लगभग २० मिनट बाद उसे निकालना आवश्यक होता है अन्यथा धौति का अगला हिस्सा आमाशय के अन्तिम द्वार तक पहुँचकर वहाँ पच सकता है, जिससे हानि होने की अत्यन्त सम्भावना होती है। इसलिए १५-२० मिनट में चाहे जितनी धौति निगली गई हो, उसे बाहर कर देना चाहिए।
- जिन्हें अत्यधिक खट्टी डकारें आती हों या आमाशय में किसी प्रकार का व्रण (अल्सर आदि) हो, उन्हें यह क्रिया नहीं करनी चाहिए।

लाभ :

१. वस्त्रधौति आमाशय की भित्तियों के ऊपर आये हुए श्लेष्मा के आवरण को हटा देती है, जिससे पाचक रस का निर्माण होकर भूख लगने लगती है।

२. कफरोगियों के लिए विशेष हितकर है। जीर्ण जठरशोथ में भी इसका अभ्यास उत्तम है।

(घ) दण्डधौति :

विधि : तीन फीट लम्बी और छह मिलीमीटर मोटे रबर की एक कोमल नली लेकर उसे पानी में उबालिए, जिससे वह कीटाणु-रहित हो जाये। नली के जिस भाग को अन्दर लेना है, उसे पत्थर पर थोड़ा घिसना चाहिए। मन्दोष्ण लवणयुक्त जल यथाशक्ति १-२ ग्लास पियें। अब सामने झुककर खड़े हो जायें। नली का एक सिरा मुख में डालकर उसे धीरे-धीरे निगलने का प्रयत्न करें। नली को इतना निगलें कि उसका अगला सिरा आमाशय में पहुँच जाये। दूसरा सिरा बाहर नीचे लटकता हुआ होगा। आमाशय में नली पहुँचते ही साइफन क्रिया द्वारा पानी स्वतः बाहर आने लगेगा। इस प्रकार, सम्पूर्ण जल को बाहर निकाल दें।

सावधानी : नली का प्रयोग करने से पूर्व खींचकर देख लेना चाहिए। अन्यथा नली के पेट में टूट जाने का भय रहता है।

लाभ: जब आमाशय की पाचक-रस-स्रावक-ग्रन्थियों पर मल जमा हो जाता है, तब अल्प मात्रा में पाचक रस का स्राव होता है। इस क्रिया में श्वसन-नली की दीवारें प्रतिवर्त क्रिया द्वारा उत्तेजित होकर शिथिल हो जाती हैं, जिससे कफ निकल जाता है। अतः भूख खुलकर लगती है और दमे के रोगियों को भी विशेष लाभ होता है। दमा में श्वसन-नली में जो ऐंठन पैदा हो जाती है, वह भी इस क्रिया के द्वारा दूर होती है, जिससे दमे के दौरे पड़ने भी रुक जाते हैं।

कायाकल्प की क्रिया: शंखधौति या शंख-प्रक्षालन

हमारी आँत की आकृति शंखाकार है। उस शंखाकार आँत का प्रक्षालन होना (शुद्ध करना) ही 'शंख-प्रक्षालन' या 'वारिसार' क्रिया कहलाता है। इस क्रिया का हमने अनेक रोगी व्यक्तियों पर परीक्षण किया और पाया है कि इस क्रिया से व्यक्ति का वास्तव में कायाकल्प हो जाता है। भयंकर जीर्ण रोगों को दूर करने में यह क्रिया सक्षम है। समस्त उदर रोग, मोटापा, बवासीर, उच्च रक्तचाप, मधुमेह, धातुरोग आदि कोई ऐसा रोग नहीं, जिसमें इस क्रिया से लाभ न होता हो। हमने तो योग-शिविरों में यहाँतक पाया है कि आधा लाभ तो अन्य योगासन एवं क्रियाओं से होता है और आधा लाभ केवल इस कायाकल्प की क्रिया से होता है। हम प्रतिदिन अपने वस्त्रों को साफ करते है। यदि एक दिन भी वस्त्र नहीं धोये जायें तो वस्त्र मैले हो जाते हैं। हमारे उदर में भी लगभग ३२ फीट लम्बी आँत है। उसकी सफाई हम जिन्दगी में कभी नहीं करते। इससे उसकी दीवारों पर सूक्ष्म मल की पर्त बन जाती है। उस पर्त के जम जाने से रसों के अवशोषण एवं निष्कासन (परित्याग) की जो ठीक-ठीक क्रिया होनी चाहिए, वह नहीं हो पाती, जिससे मन्दाग्नि, अपच, खट्टी डकारें आना आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। मल के सड़ने से पेट में दुर्गन्ध हो जाती है। गैस्टिक की बीमारी हो जाती है। रस का निर्माण ठीक से नहीं हो पाता। जब मुख्य यन्त्र ही विकृत हो जाता है, तब सहायक यन्त्र आमाशय, अग्न्याशय (पेन्क्रियाज) आदि भी प्रभावित हो जाते हैं और विविध प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

हमारा शरीर एक यन्त्र है। दुनिया के आश्चर्यों में एक बहुत बड़ा आश्चर्य है कि इतना अद्भुत यन्त्र किसने बनाया? जैसे हम वाद्ययन्त्रों, गाड़ी, घड़ी एवं अन्य मशीनों की पूरी साफ-सफाई तथा मरम्मत (Overhauling) करवाते हैं, जिससे ये यन्त्र-मशीनें ठीक प्रकार से कार्य करते हैं, वैसे ही हमें अपने शरीर-रूपी यन्त्र की भी साफ-सफाई (Servicing) और ओवरहॉलिंग करना चाहिए, जिससे यह यन्त्र स्वस्थ, दीर्घायु एवं बलिष्ठ बने।

क्रिया हेतु आवश्यक सामग्री: एक ग्लास (पानी पीने के लिए), गुनगुना पानी, जिसमें उचित परिमाण में नीबू का रस एवं सेंधा नमक डाला हुआ हो, चावल एवं मूँगदाल की पतली खिचड़ी, प्रति व्यक्ति के हिसाब से लगभग १०० ग्राम गाय का घी; गाय का घी, यदि न मिले तो भैंस का ले सकते हैं। आसन करने हेतु दरी या कम्बल, ओढ़ने हेतु हल्की चादर तथा पास में ही शौचालय हो।

पूर्व तैयारी: शंख-प्रक्षालनक्रिया को करने से पहले कम से कम एक सप्ताह पूर्व ही आसनों का अभ्यास प्रारम्भ कर देना चाहिए। जिस दिन शंख-प्रक्षालन करना हो, उससे पूर्व रात्रि को सुपाच्य हल्का भोजन लगभग ८ बजे तक कर लेना चाहिए। सायंकाल दूध में लगभग ५० से १०० ग्राम तक मुनक्का डालकर पी लें तो शुद्धि की क्रिया अति उत्तम होती है। रात्रि को १० बजे से पूर्व सो जायें। दूसरे दिन प्रातःकाल नित्यकर्म– स्नान, मंजन एवं शौच आदि से, यदि सम्भव हो तो निवृत्त हो जायें। यदि शौच न भी हो, तो कोई बात नहीं।

तीन प्रकार का जल:

(क) नींबू तथा सेंधा नमकवाला: पानी में उचित परिमाण में नींबू एवं सेंधा नमक मिलाकर गर्म पानी तैयार करें। यह पानी वात, कफ एवं उच्च रक्तचाप के रोगियों को छोड़कर शेष सभी स्वस्थ व्यक्तियों को पीना होता है।

(ख) वात तथा कफरोगियों के लिए: जोड़ों में दर्द, आमवात (गठिया), सूजन, सर्वाइकल, स्पोण्डोलाइटिस, स्लिप डिस्क आदि किसी भी प्रकार की शारीरिक पीड़ा तथा कफरोग हो, तो उनको केवल सेंधा नमक मिला हुआ गर्म पानी पीना चाहिए।

(ग) उच्च रक्तचाप तथा चर्मरोगियों के लिए: जिन लोगों को उच्च रक्तचाप या चर्मरोग हो, उनको नींबू रस मिला हुआ गर्म जल पीकर ही यह क्रिया करनी चाहिए।

विधि:

तैयार किये हुए यथानिर्दिष्ट पानी के एक या दो ग्लास उत्कटासन में (उकडू) बैठकर बिना स्वाद लिये जल्दी से पी जायें। फिर शंख-प्रक्षालन के निर्धारित पाँचों आसनों की दो आवृत्ति करके, इच्छानुसार पानी पियें। पानी पीकर पुनः क्रमशः आसन करें। इस प्रकार दो-तीन बार पानी पीते रहने और आसन करते रहने से शौच आना आरम्भ हो जायेगा। शौचालय में अधिक देर तक जोर लगाकर शौच करने की चेष्टा न करें। शौच जितना हो जाता है, उतना करें। शौचालय में बैठकर अश्विनी मुद्रा (गुदाभाग को खींचना और छोड़ना) करें, इससे पेट ठीक प्रकार से साफ होगा तथा बवासीर आदि रोग भी नष्ट होंगे। शौच से आने के बाद फिर पानी पियें और आसन करें। इस प्रकार, पानी पीकर आसन करते जायें तथा शौच जाते रहें। जब ८-१० बार शौचालय जायेंगे, तब आप देखेंगे कि अब पीला पानी आना बन्द हो गया है। जैसा पानी आप पी रहे हैं, वैसा ही पानी गुदाभाग से निकल रहा है। तब ४-५ ग्लास या स्वेच्छापूर्वक यथेष्ट जल पीकर वमनधौति कर लें। वमनधौति करने के पश्चात् ३०-४० मिनट शवासन में लेटकर विश्राम करें। शरीर को हल्के कपड़े से ढककर रखें; क्योंकि इस समय अधिक वायु भी शरीर को नहीं लगनी चाहिए। ३०-४० मिनट विश्राम करके छिलकावाली मूँगदाल एवं चावल समान मात्रा में मिलाकर बनी हुई पतली खिचड़ी में गर्म किया हुआ यथेष्ट घी डालकर खायें। कम से कम ५० ग्राम घी तो खा ही लेना चाहिए, स्वस्थ व्यक्ति यथाशक्ति जितनी इच्छा हो खायें। इस क्रिया से सम्पूर्ण शरीर
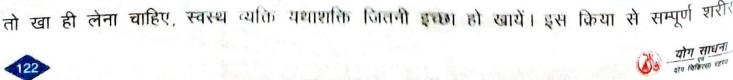
की शुद्धि हो जाती है। शुद्धि करने के पश्चात् जैसे गाड़ियों में ग्रिसिंग कराते हैं, वैसे ही शरीर में ग्रिसिंग करना चाहिए। इस क्रिया के पश्चात् जो घी खाया जाता है, उससे आँत आदि सभी ग्रन्थियाँ (Glands) कोमल हो जाती हैं। जब उनपर घी लग जाता है, तब मल आदि उनसे दुबारा नहीं चिपकते। इस समय खाये गये घी से किसी भी रोगी को कोई हानि नहीं होती। खिचड़ी खाकर सम्भव हो तो योगनिद्रा करें। योगनिद्रा शवासन के तुल्य होती है। उसमें ध्यान की प्रक्रिया का विशेष महत्त्व है। अब शंख-प्रक्षालन हेतु जो पाँच-आसन हैं, उनकी विधि लिखते हैं।

(क) ऊर्ध्वताड़ासन

ऊर्ध्वताड़ासन

विधि:

- सीधे खड़े होकर दोनों हाथों की अंगुलियों को आपस में डालते हुए सिर पर रखें। पैरों को मिलाकर रखें।
- श्वास अन्दर भरते हुए हाथों को ऊपर की ओर तानें तथा एड़ियों को भी साथ-साथ ऊपर उठायें। श्वास छोड़ते हुए नीचे आ जायें। हाथ सिर पर ही रहेंगे। इस प्रकार ५ चक्र करें।

(ख) तिर्यक् ताड़ासन

विधि:

- पूर्ववत् हाथों को ऊपर ले जाकर अंगुलियों को एक दूसरी में डालकर ऊपर सीधा करके स्थिर करें। हथेलियाँ ऊपर की ओर खुली हुई होंगी, पैरों के बीच लगभग एक फुट का अन्तर होगा।

- श्वास अन्दर भरते हुए दायीं ओर, बिना आगे-पीछे झुके, जितना झुक सकते हों, हाथों को झुकायें। कोहनियों से हाथ नहीं मुड़ने चाहिए। श्वास बाहर छोड़ते हुए सिर के ऊपर हाथों को ले आयें। इसी प्रकार बायीं ओर से करें। इस प्रकार एक-एक ओर से ५-५ बार करें।

तिर्यक् ताड़ासन
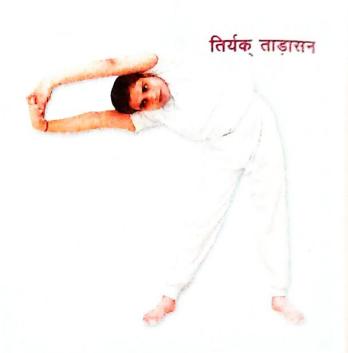
(ग) कटिचक्रासन

विधि :

- समानान्तर, हथेलियाँ भूमि की ओर करते हुए सीधा रखें।
- दायें हाथ को सामने से घुमाते हुए बायें कन्धे पर रखें। बायाँ हाथ पीछे से घुमाकर कमर पर रखें। कमरवाले हाथ की हथेली ऊपर की ओर होगी।
- अब गर्दन को बायीं ओर घुमाते हुए पीछे से दायें पैर की एड़ी को देखें। यदि नहीं देख सकते हों तो केवल देखने मात्र का प्रयास करें। एक ओर से करने के पश्चात् दूसरी ओर से करें। इस प्रकार इसके भी १-१ से ५-५ चक्र तक करें।

कटिचक्रासन (प्रथम विधि)

दूसरी विधि :

खड़े होकर दोनों हाथों को छाती के सामने सीधा करके रखें। श्वास अन्दर भरते हुए हाथों को दायीं ओर जितना घुमा सकते हों घुमायें। हाथों के बीच छाती जितना अन्तर हो तथा दृष्टि हाथों के बीच रहे। श्वास छोड़ते हुए बीच में आ जायें। इसी प्रकार दूसरी ओर से भी करें।

कटिचक्रासन
(द्वितीय विधि)

(घ) तिर्यक् भुजंगासन

विधि :

- पेट के बल लेटकर दोनों हाथों को छाती के दोनों ओर कन्धों के समीप रखें। कोहनियाँ पार्श्वभागों से लगी हुई तथा ऊपर उठी हुई होंगी।
- पैरों में लगभग एक फुट का फासला रखते हुए पंजों को पीछे की ओर तानकर रखें।
- श्वास अन्दर भरते हुए छाती को उठायें। नाभि तक अगला हिस्सा उठने पर दायें ओर के कन्धे के ऊपर से बायें पैर की एड़ी को देखें। श्वास छोड़ते हुए नीचे आ जायें। इसी प्रकार बायीं ओर से करें।

तिर्यक् भुजंगासन

(ङ) उदराकर्षासन या शंखासन

विधि :

शंखासन

- उकडू बैठकर दोनों हाथों को घुटनों पर रखें। पैरों के बीच लगभग एक-सवा फुट का अन्तर होना चाहिए।
- श्वास अन्दर भरते हुए दायें घुटने को बायें पैर के पंजे के पास टिकायें तथा बायें घुटने को दायीं ओर नीचे की तरफ झुकायें।
- गर्दन को बायीं ओर से पीछे की ओर घुमायें और पीछे देखें। थोड़े समय तक रुकने के पश्चात् श्वास छोड़ते हुए बीच में आ जायें। इसी प्रकार दूसरी ओर से करें।

शंख-प्रक्षालन के लाभ :

- यह क्रिया, जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं, समस्त प्रकार के रोगों को दूर करती है।
- शरीर शुद्ध निर्मल होकर पुष्प की भाँति हल्का एवं कान्तिमय हो जाता है।
- सभी प्रकार के उदररोग, यथा कब्ज, मन्दाग्नि, गैस, अम्लपित्त, खट्टी-खट्टी डकारों का आना एवं बवासीर आदि निश्चित रूप से दूर होते हैं।
- मोटापा, मधुमेह, श्वासरोग, हृदयरोग, अपेण्डिसाइटिस, सिर-दर्द, मुख, गला, जिह्वा और आँख के सभी रोगों में अत्यन्त लाभकारी है।
- स्त्रियों के मासिक धर्म की विकृतियों को दूर करता है। सन्धिवात, आमवात आदि वातरोग, बालों का असमय में सफेद होना, चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ जाना या काले-काले दाग होना आदि सभी विकृतियों को दूर करता है।
- आँत, गुर्दे, अग्न्याशय तथा तिल्ली-सम्बन्धी सभी रोगों में अत्यन्त लाभप्रद है। इसके तो जितने लाभ बतायें जायें, उतने ही कम हैं।

सावधानियाँ :

- प्रारम्भ में इसका अभ्यास गुरु के सान्निध्य में ही करना चाहिए। आसन करते समय अधिक थकान आयेगी, जिससे आपको कष्ट होगा।

- शंख-प्रक्षालन करने में नमक और गर्म पानी का उपयोग किया जाता है। आसन करने से उष्णता और प्यास बढ़ती है। ऐसे में यदि ठण्डा पानी पी लिया जाये तो हानि होती है और शरीर में थकावट एवं कमजोरी आ जाती है। साधक अस्वस्थता का अनुभव करता है। इसके लिए यह जरूरी है कि शुरू में पानी का तापक्रम साधारण गर्म और नमक की मात्रा अधिक रखी जाये। अगली बार नमक की मात्रा धीरे-धीरे कम करते जाने से यह समस्या समाप्त हो जाती है। यदि पानी पीने से उल्टी आने लगे तो पानी कम पियें तथा तिर्यक् भुजंगासन न करें।

- शौच में पहले मलभाग निकलेगा। उसके पश्चात् पीला पानी, पीले पानी के बाद पानी जैसा शौच निकलेगा। उसके बाद फिर पीलापन लिये हुए पानी निकलेगा। तब यह क्रिया बन्द कर देनी चाहिए।

- खिचड़ी खाने के बाद ३ घण्टे तक पानी नहीं पीना चाहिए। तीन घण्टे बाद भी पानी पीना हो तो थोड़ा गर्म पानी पियें। ठण्डा जल उस दिन नहीं पीना चाहिए, क्योंकि ठण्डा पानी पीने से गले में विकृति, सर्दी-जुकाम आदि हो सकते हैं।

- दिन भर विश्राम करें, हवा में नहीं घूमें। क्रिया के पश्चात् विश्राम तो करना है, पर सोना नहीं है।

- क्रिया के पश्चात् स्नान न करें। यदि गर्मी के दिन हों तो सायंकाल गर्म जल से स्नान कर सकते हैं।

- क्रिया के बाद पंखे की हवा में बैठना तथा शीतकाल में धूप में बैठना वर्जित है।

- दिन भर ठण्डे पानी से हाथ या पैर न धोयें। इससे सूजन आ सकती है। जिस दिन आकाश में बादल हों या वर्षा हो रही हो, उस दिन यह क्रिया नहीं करनी चाहिए।

- बालक, प्रसूता स्त्री, अत्यधिक कमजोर व्यक्ति को यह क्रिया नहीं करनी चाहिए।

- क्रिया के पश्चात् तीन दिन तक दूध और दूध से बनी वस्तु मिठाई, छाछ, दही आदि (घी को छोड़कर) नहीं खाना चाहिए।

- दाल एवं चावल समान मात्रा में डालकर पतली खिचड़ी बनानी चाहिए। पकाते समय सेंधा नमक और हल्दी ही डालनी है। अन्य किसी चीज का प्रयोग न करें। जिस दिन क्रिया करते हैं, उस दिन केवल खिचड़ी एवं घी ही खाना होता है, इसके अतिरिक्त दूसरी कोई चीज न खायें। इसके बाद भी जिनका वजन अधिक है तथा जिनको पेट के जीर्ण रोग हैं, उनको एवं मधुमेह के रोगियों को तीन दिन तक केवल खिचड़ी खानी चाहिए। खिचड़ी में पहले जितना घी नहीं डालना चाहिए। सामान्यतया दूसरे दिन लौकी, तुरई आदि की थोड़ी सब्जी भी ले सकते हैं। कहने का अभिप्राय है कि खाने में हल्के सुपाच्य पदार्थ ही लेने हैं, वह भी कम मात्रा में। धीरे-धीरे तीन दिन बाद सामान्य भोजन करें।

अभ्यास का समय:

मधुमेह के रोगियों को ४० दिन में एक बार यह क्रिया अवश्य करनी चाहिए। बवासीर, पुरानी कब्ज के रोगी तथा सोराइसिसवाले रोगी भी ४० दिन में एक बार कर सकते हैं। स्वस्थ व्यक्ति को भी छः महीने या वर्ष में एक बार यह क्रिया अवश्य करनी चाहिए, जिससे किसी प्रकार का रोग देह में न आने पाये।

लघु शंख-प्रक्षालन:

जीर्ण कब्ज, मोटापा तथा मधुमेह के रोगियों के लिए यह क्रिया विशेष लाभप्रद है। इस क्रिया में भी पूर्व की तरह ही यथायोग्य गर्म पानी पीकर आसन किये जाते हैं। इस क्रिया में पानी ७-८ गिलास ही पीना है, अधिक नहीं। इससे तीन-चार बार शौच होकर पेट साफ हो जायेगा। इसके पश्चात् इच्छा हो तो वमनधौति भी कर सकते हैं।

टिप्पणी: इसके लाभ पूर्व क्रिया के समान हैं। इसमें विशेष परहेज आदि भी नहीं करने होते हैं। क्रिया के बाद थोड़ा घी डालकर खिचड़ी खा लें। सायंकाल सब्जी-रोटी खा सकते हैं। जिस दिन यह लघुशंख-प्रक्षालन करें, केवल उसी दिन दूध-छाछ न पियें तो अच्छा है।

गणेश-क्रिया (मूल शोधन):

अरण्डी के तेल में बायें हाथ की तर्जनी अंगुली को डुबा लें। गुदा में एक इंच के लगभग अंगुली अन्दर प्रविष्ट करके उसे चारों ओर घुमाकर मल को बाहर करें। हाथ धोकर पुनः इसी प्रकार करें। इस प्रकार गुदा भाग में शौच के पश्चात् बचे हुए सम्पूर्ण मल को बाहर निकाल दें। यह क्रिया शौच के उपरान्त ही की जाती है। अंगुली पर नाखून बिल्कुल नहीं होना चाहिए। नेलकटर से नाखून काटकर उसे अच्छी तरह घिस लेना चाहिए।

लाभ: इस क्रिया से गुदा की बाह्य एवं आभ्यन्तर संवरणी पेशियों का बल बना रहता है, जिससे कब्ज आदि रोग नहीं होते। शौच करने के पश्चात् गुदाभाग में अवशिष्ट मल इस क्रिया से आसानी से बाहर हो जाता है, जिससे बवासीर आदि रोग से ग्रस्त नहीं होना पड़ता। बवासीर के रोगियों के लिए यह क्रिया अत्यन्त लाभकारी है। उन्हें प्रतिदिन यह क्रिया करनी चाहिए।

३. वस्ति

गुदा-द्वार द्वारा पानी या वायु का आकर्षण करके बड़ी आँत की शुद्धि करना वस्तिकर्म कहलाता है। यह द्विविध होती है– जलवस्ति तथा पवनवस्ति। इस क्रिया में दक्षता प्राप्त करने के लिए नौलि मध्यमा, उड्डीयान बन्ध और वाम दक्षनौलि-संचालन का अभ्यास होना आवश्यक है।

(क) जलवस्ति:

विधि:

- नाभि तक पानी आ जाये, ऐसे स्वच्छ पानी में खड़े होकर यह क्रिया करनी चाहिए। यह क्रिया किसी बड़े ट में पानी भरकर उत्कटासन में बैठकर भी की जा सकती है।

- उत्कटासन में बैठकर छह-सात इंच की लम्बी और आधा इंच मोटी लकड़ी की छिद्रयुक्त नली, जिसके दोनों भाग घिसकर तथा चिकना द्रव्य लगाकर गोल किये हुए हों, गुदा द्वार में प्रविष्ट करें। नली का दूसरा सिरा पानी में डूबा हुआ रहे।
- श्वास बाहर निकालकर उड्डीयान बन्ध एवं मूलबन्ध लगाते हुए नौलि मध्यमा करें। इससे पानी तबतक ऊपर खिंचता रहेगा जबतक कि आप श्वास न लें।
- श्वास अन्दर लेने से पूर्व नली के दूसरे हिस्से पर अंगुली लगाकर बन्द कर लें। पुनः श्वास को बाहर निकालकर पूर्ववत् पानी ऊपर खींचे। इस प्रकार ५-६ बार में पर्याप्त पानी बड़ी आँत में चला जायेगा।
- अब नली को बाहर निकाल दें और खड़े होकर नौलि क्रिया करें। इससे पानी आँत में फैलकर उसकी सफाई कर देगा।
- दाईं ओर से नौलि घुमाने पर शौच जाने की इच्छा होगी, तब शौच चले जायें।
- यह क्रिया बिना नली के भी नाभि तक के पानी में पूर्ववत् उड्डीयान बन्ध एवं मूलबन्ध लगाकर पानी ऊपर चढ़ाकर की जा सकती है। जब मूलबन्ध आदि सम्यक् प्रकार से लग जाते हैं, तब गुदाद्वार अपने-आप खुल जाता है और पानी अन्दर चला जाता है। पानी में थोड़ा नींबू का रस मिला सकते हैं। इस क्रिया का अभ्यास प्रातः शौचादि से निवृत्त होकर करना चाहिए।

लाभ: वस्ति द्वारा बड़ी आँत की शुद्धि होती है, जिससे कब्ज आदि रोग दूर होते हैं। पेट की गर्मी दूर हो जाती है, जिससे स्वप्नदोष आदि धातुरोग शान्त हो जाते हैं। यह क्रिया एनिमा से अधिक लाभकारी है। एनिमा में दबाव डालकर पानी प्रविष्ट कराया जाता है, इस प्रक्रिया में बड़ी आँत निष्क्रिय रहती है। इससे बड़ी आँत का प्रसार होकर उसका स्वाभाविक बल कम हो जाता है। जबकि वस्ति में अपनी शक्ति से आँत पानी को आकर्षित करती है, जिससे आँतों की शक्ति कम होने की अपेक्षा बढ़ती है।

(ख) पवनवस्ति

उकडू बैठकर पूर्ववत् श्वास बाहर निकालकर मूलबन्ध एवं उड्डीयान बन्ध लगाकर नौलि मध्यमा करें, वायु अन्दर भर जायेगी। इस प्रकार वायु अन्दर भरकर बाहर निकालना वायुवस्ति कहलाती है।

लाभ: पूर्व के समान हैं। परन्तु पूर्वक्रिया जलवस्ति में मल बाहर निकलता है, और इसमें केवल दूषित वायु बाहर निकलेगी। इसलिए यह क्रिया वायु-विकारों के लिए विशेष उपयोगी एवं बवासीर में भी लाभप्रद है और जठराग्नि को प्रदीप्त करती है।

४. त्राटक

विधि:

- किसी भी एक ध्यानात्मक आसन यथा पद्मासन, सिद्धासन आदि में बैठ जायें।

दक्षिणनौलि :

विधि : वामनौलि की भाँति दक्षिणनौलि है। इसकी प्रक्रिया वामनौलि के समान है।

नौलि-संचालन :

विधि : जब दोनों दिशाओं से नौलि होने लगे, तो नौलि को बाहर निकालकर हाथों से जंघाओं की मालिश करें, अर्थात् हथेलियों को ऊपर नीचे करें। ऐसा करने से अपने-आप नौलि दायीं से बायीं ओर घूमने लगेगी। अभ्यास में कुछ काल अवश्य लग जाता है। दायीं ओर से करने के पश्चात् दूसरी ओर से करें।

लाभ :

- 'हठयोगप्रदीपिका' में नौलि को सभी क्रियाओं में मूर्धन्य कहा है : **'हठक्रिया मौलिरियं च नौलिः।'**
- मन्दाग्नि, कब्ज, गैस, अतिसार, संग्रहणी, उदर का मोटापा इत्यादि समस्त उदररोग निश्चित रूप से दूर होते हैं।
- स्त्रीरोग, कष्टार्तव आदि में लाभकारी है।
- कुण्डलिनी-योग में प्राण-अपान का योग करानेवाली यह महत्त्वपूर्ण क्रिया है।

सावधानी : स्लिप डिस्क, हृदयरोग तथा अल्सर में इस क्रिया को नहीं करना चाहिए।

६. कपालभाति :

कपालभाति के सम्बन्ध में सम्पूर्ण जानकारी एवं लाभ जानने के लिए 'प्राणायाम-रहस्य' पुस्तक में देखें।

मुद्रा-प्रकरण

योग-साधना में अष्टांग के अलावा मुद्राओं का भी विशेष महत्त्व है। मुद्रायें आसनों के विकसित रूप हैं। आसनों में इन्द्रियों की प्रधानता और प्राणों की गौणता होती है, जबकि मुद्राओं में इन्द्रियों की गौणता और प्राणों की प्रधानता होती है। शास्त्रों में मुद्राओं का महत्त्व बताते हुए कहा गया है : **'नास्ति मुद्रासमं किंचित् सिद्धिदं क्षितिमण्डले।'** अर्थात्, इस पृथ्वी पर मुद्रा के समान सफलता देनेवाला अन्य कोई कर्म नहीं है। सुविधा की दृष्टि से विभिन्न प्रमुख मुद्राओं का वर्णन दो शीर्षकों में किया जा रहा है :

- **तत्त्वों का नियमन करनेवाली हस्तमुद्राएँ**
- **प्राणोत्थान एवं कुण्डलिनी-जागरण में सहायक मुद्राएँ**

तत्त्वों का नियमन करनेवाली हस्तमुद्राएँ

यह समस्त ब्रह्माण्ड पंचतत्त्व से निर्मित है। हमारा देह भी पंचतत्त्व का संघात है। शरीर की पाँच अंगुलियाँ इन पाँच तत्त्वों का प्रतिनिधित्व करती हैं। अंगुष्ठ अग्नि का, तर्जनी वायु का, मध्यमा आकाश का, अनामिका पृथ्वी का तथा कनिष्ठा जलतत्त्व का प्रतिनिधित्व करती है। पंचतत्त्व की समस्थिति से देह नीरोग रहता है तथा विषम स्थिति से रोग पैदा हो जाते हैं। मुद्राविज्ञान के अनुसार इन्हीं पाँच तत्त्वों के समन्वय से शरीर की आन्तरिक ग्रन्थियों, अवयवों तथा उनकी क्रियाओं को नियमित किया जाता है तथा शरीर की सुषुप्त शक्तियों को जागरित किया जाता है।

हस्तमुद्राएँ तत्काल ही असर करना शुरू कर देती हैं। जिस हाथ में ये मुद्राएँ बनाते हैं, शरीर के विपरीत भाग में उनका तुरन्त असर होना शुरू हो जाता है। ये मुद्राएँ किसी भी तरह से - चलते-फिरते, उठते-बैठते या खड़े-खड़े कर सकते हैं। वज्रासन, पद्मासन अथवा सुखासन में बैठकर करना अधिक लाभप्रद है। इन मुद्राओं को प्रतिदिन १० मिनट से प्रारम्भ करके ३० से ४५ मिनट तक करने से पूर्ण लाभ होता है। एक बार में न कर सकें, तो दो-तीन बार में भी कर सकते हैं। किसी भी मुद्रा को करते समय जिन अंगुलियों का कोई काम न हो, उन्हें सीधी रखें।

१. ज्ञानमुद्रा या ध्यानमुद्रा : अंगुष्ठ एवं तर्जनी अंगुली के अग्रभागों को परस्पर मिलाकर शेष तीनों अंगुलियों को सीधा रखना होता है।

लाभ :

- धारणा एवं ध्यानात्मक स्थिति का विकास होता है। एकाग्रता बढ़ती है तथा नकारात्मक विचार कम होते हैं।
- इस मुद्रा से स्मरण-शक्ति बढ़ती है, इसलिए इसके निरन्तर अभ्यास से बच्चे मेधावी एवं ओजस्वी बनते हैं।
- मस्तिष्क की स्नायुएँ मजबूत होती हैं। सिरदर्द, अनिद्रा एवं तनाव दूर होता है। क्रोध का नाश होता है। अधिक अच्छे परिणाम के लिए यह मुद्रा करने के बाद प्राणमुद्रा भी करें।

ज्ञानमुद्रा

वायुमुद्रा

२. वायुमुद्रा : तर्जनी अंगुली को अंगुष्ठ के मूल में लगाकर अंगूठे को हल्का दबाकर रखने से यह वायुमुद्रा बनती है। शेष तीन अंगुलियाँ सीधी रखनी चाहिए।

लाभ : इसके अभ्यास से समस्त प्रकार के वायु-सम्बन्धी विकार– गठिया, सन्धिवात, ऑर्थराइटिस, पक्षाघात, कम्पवात, सियाटिका, घुटने के दर्द तथा गैस बनना आदि रोग दूर होते हैं। गर्दन एवं रीढ़ के दर्द में लाभ होता है। रक्त-संचरण के दोष दूर होते हैं।

३. शून्य मुद्रा : मध्यमा अंगुली आकाश-तत्त्व का प्रतिनिधित्व करती है। इसको अंगुष्ठ के मूल में लगाकर अंगूठे से हल्का दबाकर रखते हैं। शेष अंगुलियाँ सीधी होनी चाहिए।

लाभ : इस मुद्रा से कान का बहना, कान में दर्द, बहरापन तथा कम सुनाई देना आदि रोग, दीर्घकाल तक कम से कम प्रति दिन एक घण्टा करने से, दूर हो जाते हैं। अस्थियों की कमजोरी तथा हृदयरोग ठीक होते हैं। मसूढ़ों की पकड़ मजबूत होती है तथा गले के रोग एवं थॉयरायड रोग में लाभ होता है।

सावधानी : भोजन करते समय तथा चलते-फिरते यह मुद्रा न करें।

४. पृथ्वीमुद्रा : अनामिका और अंगुष्ठ के अग्रभागों को मिलाकर रखने तथा शेष तीन अंगुलियों को सीधा करने से यह पृथ्वीमुद्रा बनती है।

लाभ : इसके निरन्तर अभ्यास से शारीरिक दुर्बलता, भार की अल्पता तथा मोटापा आदि रोग दूर होते हैं। यह मुद्रा पाचनशक्ति ठीक करती है, जीवनी शक्ति एवं सात्त्विक गुणों का विकास करती है तथा विटामिनों की कमी को दूर करती है। शरीर में स्फूर्ति, कान्ति एवं तेजस्विता आती है।

५. प्राणमुद्रा : यह मुद्रा कनिष्ठा, अनामिका तथा अंगुष्ठ के अग्रभागों को परस्पर मिलाने से बनती है। शेष दो अंगुलियाँ सीधी रखनी चाहिए।

लाभ : इस मुद्रा से प्राण की सुप्त शक्ति का जागरण होता है, तथा शरीर में स्फूर्ति, आरोग्य एवं ऊर्जा का विकास होता है। यह मुद्रा आँखों के दोषों को दूर करके नेत्र ज्योति बढ़ाती है, शरीर की रोग प्रतिरोधक शक्ति बढ़ाती है, विटामिनों की कमी को दूर करती है तथा थकान दूर करके नवशक्ति का संचार करती है। लम्बे उपवास काल के दौरान भूख-प्यास नहीं सताती। अनिद्रा में इसे ज्ञान मुद्रा के साथ करने से लाभ होता है।

६. अपानमुद्रा : अंगुष्ठ, मध्यमा एवं अनामिका के अग्रभागों को स्पर्श करके शेष दो अंगुलियों को सीधा रखने से यह मुद्रा बनती है।

लाभ : शरीर के विजातीय तत्त्व बाहर निकलते हैं तथा शरीर निर्मल बनता है। इसके अभ्यास से कब्ज, बवासीर, वायु विकार, मधुमेह, मूत्रावरोध, गुर्दों के दोष, दाँतों के विकार आदि दूर होते हैं। पेट के लिए यह उपयोगी मुद्रा है। हृदयरोग में लाभ होता है तथा पसीने का स्राव होता है।

सावधानी : इस मुद्रा से मूत्र अधिक स्रवित होगा।

७. अपानवायुमुद्रा : अपानमुद्रा तथा वायुमुद्रा को एक साथ मिलाकर करने से यह मुद्रा बनती है। कनिष्ठा अंगुली सीधी होती है।

लाभ : हृदय एवं वातरोगों को दूर कर शरीर में आरोग्य को बढ़ाती है। जिनका दिल कमजोर है, उन्हें इसे प्रतिदिन करना चाहिए। दिल का दौरा पड़ते ही यह मुद्रा करने पर आराम होता है। पेट में गैस होने पर यह उसका निष्कासन करती है। सिर-दर्द, दमा एवं उच्च रक्तचाप में लाभ होता है। सीढ़ियों पर चढ़ने से ५-७ मिनट पहले यह मुद्रा करके चढ़ने से आराम मिलता है।

प्राणमुद्रा

अपानमुद्रा

अपानवायुमुद्रा

८. सूर्यमुद्रा : अनामिका अंगुली को अंगूठे के मूल पर लगाकर अंगूठे से दबायें।

लाभ : इस मुद्रा से शरीर सन्तुलित होता है, वजन घटता है एवं मोटापा कम होता है और शरीर में उष्णता की वृद्धि होकर पाचन में मदद मिलती है। तनाव में कमी, शक्ति का विकास, रक्त में कॉलेस्ट्रोल कम होता है। इस मुद्रा के अभ्यास से मधुमेह, यकृत् (जिगर) के दोष दूर होते हैं।

सावधानी : इस मुद्रा को दुर्बल व्यक्ति न करें। गर्मी में ज्यादा समय तक न करें।

९. वरुणमुद्रा : कनिष्ठा अंगुली को अंगूठे से लगाकर रखें।

लाभ : इस मुद्रा से शरीर का रूखापन नष्ट होता है तथा चमड़ी चमकीली तथा मुलायम बनती है। चर्मरोग, रक्तविकार, मुँहासे एवं जलतत्त्व की कमी से उत्पन्न व्याधियों को दूर करती है। चेहरा सुन्दर बनता है।

सावधानी : कफ प्रकृति वाले यह मुद्रा अधिक न करें।

सूर्यमुद्रा

वरुणमुद्रा

१०. लिंगमुद्रा : चित्र के अनुसार मुट्ठी बाँधें तथा बायें हाथ के अंगूठे को खड़ा रखें, अन्य अंगुलियाँ परस्पर बँधी हुई हों।

लिंगमुद्रा

लाभ : यह मुद्रा शरीर में गर्मी बढ़ाती है। सर्दी-जुकाम, दमा-खाँसी, साइनस, लकवा तथा निम्न रक्तचाप में लाभ करती है। यह कफ को सुखाती है।

सावधानी : इसका प्रयोग करने पर जल, फल, फलों का रस, घी और दूध का सेवन अधिक मात्रा में करें। इसे अधिक लम्बे समय तक न करें।

धारणाशक्ति मुद्रा

११. धारणाशक्ति मुद्रा : यह मुद्रा श्वास को अधिक समय तक फेफड़ों में रोकनेवाली मुद्रा है। जब पूरक करें तब अंगूठे के ऊपरवाले भाग १ को अंगुली से दबायें। इससे आन्तरिक कुम्भक ज्यादा समय तक होगा। अंगूठे के मध्य भाग (भाग-२) में यदि इस प्रकार दबाव दिया जाये तो कुम्भक और अधिक समय तक कर सकेंगे। अंगूठें के मूल भाग (भाग-३) में यदि इसी तरह दबाव दिया जाये तो श्वास को बहुत अधिक समय तक भीतर सरलता से रोका जा सकेगा।

लाभ : फेफड़ों में ज्यादा समय तक श्वास रोकने से प्राणवायु अधिक मिलती है तथा रक्त एवं शरीर को अधिक बल मिलता है एवं पूरे दिन में लिये जानेवाले श्वासोच्छ्वास की मात्रा को काफी घटाया जा सकता है, जिससे उम्र बढ़ती है।

प्राणोत्थान एवं कुण्डलिनी-जागरण में सहायक मुद्राएँ

१. भूचरी मुद्रा : पद्मासन या सिद्धासन आदि किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठकर नासिका से लगभग चार अंगुल दूर शून्य आकाश में मन को स्थिर करना भूचरी मुद्रा है।

लाभ : एकाग्रता को बढ़ाकर मन को ध्यान के लिए उपयुक्त बनाती है।

२. खेचरी मुद्रा : जिह्वा को उल्टा मोड़कर तालु में लगाने से खेचरी मुद्रा बनती है। इस मुद्रा का अभ्यास किसी गुरु के सान्निध्य में ही करना चाहिए।

लाभ : योगशास्त्र में खेचरी मुद्रा के लाभ के सम्बन्ध में अतिशय वर्णन मिलता है। योग-परम्परा में ऐसा माना जाता है कि इस मुद्रा के सतत अभ्यास से योगी को अमृत रस का स्वाद आने लगता है। खेचरी के अभ्यास से अमृत-ग्रन्थि से अमृत रस (मीठा रस) स्रवित होने लगता है। साधक को निद्रा, भूख, प्यास आदि नहीं सताते।

३. अश्विनी मुद्रा : पद्मासन या वज्रासन आदि किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठकर मलद्वार का आकुंचन एवं प्रसारण करना अश्विनी मुद्रा कहलाती है। इसका अभ्यास लेटकर, बैठकर या किसी भी स्थिति में कभी भी (पर खाली पेट रहे तब) कहीं भी किया जा सकता है। बाह्य कुम्भक कर इस क्रिया को करने से अधिक लाभ होता है। इसे २०-२५ बार से बढ़ाकर ५०—१०० बार तक लगातार करना चाहिए।

लाभ :

- यह मुद्रा प्राणोत्थान एवं ब्रह्मचर्य में सहयोगी है।
- गैस, कब्ज, बवासीर एवं मूत्ररोगों को दूर कर वस्तिप्रदेश को स्वस्थ बनाती है।
- इसके अभ्यास से स्त्री-पुरुष दोनों के यौनांग सशक्त और निर्विकार रहते हैं। स्त्रियों का गर्भाशय स्वस्थ और सुदृढ़ रहता है। गर्भवती महिला इसका अभ्यास करती रहे, तो प्रसव सुखपूर्वक होता है।

४. योनिमुद्रा : सिद्धासन में बैठकर पहले श्वास अन्दर खींच लें फिर हाथों के अंगूठों से दोनों कानों को, दोनों तर्जनियों से दोनों आँखों को, मध्यमा अंगुलियों से दोनों नथुनों को, अनामिका अंगुलियों से नाक के छिद्रों को और कनिष्ठा अंगुलियों से होठों को दबा लें। इस प्रकार सब द्वार बन्दकर 'ओम्' का मानसिक जाप करते हुए मन को एकाग्र रखते हुए यह दृढ़ संकल्प करें कि ऊर्जा नीचे से ऊपर की ओर उठकर चक्रों का भेदन करती हुई सहस्र-दल कमल में पहुँच रही है। इसे पराङ्मुखी मुद्रा भी कहते हैं।

लाभ : प्राण और अपान वायु संयुक्त होकर कुण्डलिनी को जागरित करने में सहायक होती है, चक्रों का दर्शन होने की स्थिति बनती है और दिव्य प्रकाश होने लगता है।

५. उन्मनी मुद्रा : पद्मासन में स्थिर होकर बैठ जायें और दृष्टि को नासिका से ऊपर भ्रूमध्य में स्थिर करके आज्ञाचक्र पर ध्यान केन्द्रित करें। मन में कोई विचार न आने दें और आज्ञाचक्र पर ही ध्यान एकाग्र रखें।

लाभ : मन को एकाग्र करने और ध्यान करने में यह मुद्रा बहुत सहायक होती है। सभी इन्द्रियाँ और मन निष्क्रिय हो जाते हैं, जिससे प्रत्याहार की स्थिति बनती है और बुद्धि स्थिर हो जाती है तथा समाधि की स्थिति बनने लगती है। ज्ञानप्रकाश का उदय तथा ऋतम्भरा प्रज्ञा का आभास होने लगता है।

६. शक्तिचालिनी मुद्रा : पेशाब रोकने के लिए जैसे मूत्रेन्द्रिय को अन्दर से खींचकर रखते हैं, उसी तरह से वज्रासन में बैठकर मूत्रेन्द्रिय को अन्दर से खींचकर पेशाब को रोकने के समान क्रिया करने और

छोड़ने को शक्तिचालिनी मुद्रा कहते हैं। इसे २०-२५ बार से बढ़ाकर लगातार ५०-१०० बार तक करने का अभ्यास करना चाहिए।

लाभ : आलस्य-प्रमाद-जड़ता आदि दोष भाग जाते हैं। शीघ्र ही प्राणोत्थान होकर कुण्डलिनी जागरित हो उठती है, जिसके फलस्वरूप चक्रविज्ञान का मार्ग खुल जाता है। इसका अभ्यास स्त्रियों के प्रजनन-अंगों, गर्भाशय आदि को सुदृढ़ एवं स्वस्थ रखता है।

७. विपरीतकरणी मुद्रा : पीठ के बल भूमि पर लेट जायें। फिर दोनों पैर मिलाकर सीधे रखते हुए ऊपर उठायें और कमर को हाथों के सहारे उठा लें। दोनों पैर मिले हुए, सीधे और छत की तरफ न उठाकर थोड़े नीचे ही रखें। सर्वांगासन में पैर ९०° अंश पर सीधे ऊपर उठे रहते हैं। परन्तु इस मुद्रा में पैर लगभग ४५° के कोण पर, अर्द्धसर्वांगासन की आकृति में उठे रहते हैं। फिर जालन्धर बन्ध लगाकर दृष्टि पैर के अंगूठे पर स्थिर कर दें। सामान्य श्वासोच्छ्वास लेते रहें। एक मिनट से शुरू कर १० मिनट तक इसका अभ्यास बढ़ाया जा सकता है।

विपरीतकरणी मुद्रा

लाभ : इसका नियमित अभ्यास करने से सर्वांगासन के सभी लाभ प्राप्त होते हैं, जठराग्नि तेज होती है। भूख खुलती है, शरीर स्वस्थ रहता है, चेहरा तेजस्वी रहता है एवं बाल जल्दी सफेद नहीं होते हैं। दिमागी ताकत बढ़ती है। पैरों की सूजन अथवा हाथीपाँव की प्रारम्भिक सूजन, कण्ठमाला, फोड़े, मुँहासे, खाज आदि रक्तविकार-जन्य रोगों से मुक्ति मिलती है। इसका विशेष प्रयोग शंख-प्रक्षालन में किया जा सकता है, जबकि क्रिया करते समय गुदाद्वार से पानी नहीं निकल रहा हो तो इस आसन के प्रयोग से छोटी आँतो 'से बड़ी आँतों में पानी तीव्रता से जाने लगता है और धीरे-धीरे बाहर निकलने लगता है, जिससे पेट साफ हो जाता है।

८. योगमुद्रा : इसके अभ्यास से शरीर स्वस्थ, प्रसन्न, चुस्त-दुरुस्त और लचीला बना रहता है। नाड़ियों की शुद्धि होती है तथा प्राणों की शक्ति बढ़ती है। अन्तःकरण पवित्र बनता है। धारणा, ध्यान और समाधि की स्थिति बनने में सहायता मिलती है। इसकी विधि एवं चित्र हेतु पृष्ठ ५२ पर योगमुद्रासन १ और २ देखें।

९. महामुद्रा : बायें पैर की एड़ी को सीवनी और उपस्थ के मध्य के चार अंगुल भाग में बलपूर्वक जमाकर दायें पैर को लम्बा फैलायें। फिर शनैः-शनैः पूरक के साथ मूलबन्ध एवं जालन्धर बन्ध लगाते हुए दायें पैर का अंगूठा पकड़कर दायें पैर के घुटने पर जमाकर यथाशक्ति कुम्भक करें। (कुम्भक के समय पूरक की हुई वायु को कोष्ठ में शनैः-शनैः फुलायें और ऐसी भावना करें कि प्राण कुण्डलिनी को जाग्रत् करके सुषुम्णा में प्रवेश कर रहा है। तत्पश्चात् मस्तक को उठाकर घुटने से शनैः शनैः रेचक करते हुए यथास्थिति में बैठ जायें। इसी प्रकार दूसरे पैर से करना चाहिए। प्राणायाम की संख्या एवं समय बढ़ाते रहें।

लाभ : 'गोरक्षपद्धति' के अनुसार क्षय, कुष्ठ, गुदावर्त (गुदा के आस-पास होनेवाले फोड़े), गुल्म, अजीर्णादि उदर के रोग तथा प्रमेह भी महामुद्रा के अभ्यास से नष्ट हो जाते हैं। इसके दीर्घकाल के अभ्यास से सुषुम्णा में प्राणों का प्रवेश तथा प्राणों का ऊर्ध्वगमन और कुण्डलिनी का जागरण होने लगता है।

१०. त्रिबन्धमुद्रा : पद्मासन में बैठकर थोड़ा पूरक करके प्रश्वास को समान-प्राण के साथ मिलायें और मूलाधार से अपान को ऊपर उठाकर तीनों बन्धों– जालन्धर, उड्डीयान एवं मूलबन्ध को लगाते हुए, इस आन्तरिक वायु को सुषुम्णा में प्रविष्ट करने का प्रयत्न करें। इसी अवस्था में रहकर दोनों हथेलियाँ दोनों पार्श्वों में दायीं-बायीं ओर भूमि पर रखकर नितम्बों को उठा-उठाकर भूमि पर धीरे-धीरे टिकायें। ऐसा कई बार करें।

लाभ : सुषुम्णा में प्राण शीघ्र प्रवेश करने लगता है। कुण्डलिनी शीघ्र चैतन्य होकर ऊर्ध्वगमन करने लगती है, चक्र भी धीरे-धीरे प्रकाशित होने लगते हैं।

११. ब्रह्ममुद्रा : वज्रासन में बैठकर गर्दन, सिर एवं कन्धों को ऊपर-नीचे, दायें-बायें, गोलाई में चारों तरफ, फिर उल्टे चारों तरफ घुमाते हैं। प्रत्येक क्रिया ५-१० बार करनी चाहिए।

लाभ : वर्टिगो (चक्कर आना), सर्वाइकल, स्पोण्डोलाइटिस, गर्दन की अकड़न एवं दर्द दूर होते हैं। इसके अभ्यास से गले के रोग नहीं होते हैं, सिर-दर्द मिट जाता है और मस्तिष्क की स्नायुएँ मजबूत होती हैं।

१२. अग्निसार-क्रिया : वज्रासन में बैठकर या खड़े होकर श्वास बाहर निकालकर पेट को आगे-पीछे चलायें। एक बार जबतक बाह्य कुम्भक कर सकें, तबतक नाभि-सहित पूरे पेडू प्रदेश का आकुंचन-प्रसारण करीब २० से ४० बार तक करें। कन्धों को न हिलायें। फिर चार-पाँच बार लम्बी गहरी श्वास लेने-छोड़ने के बाद पुनः इसी

प्रकार इस क्रिया की आवृत्ति करें। इस प्रकार इस क्रिया को ४-५ बार या शक्ति के अनुसार अधिक बार करें।

लाभ :

- साधना में अधिक देर तक बैठने के बाद भी अजीर्ण नहीं हो पाता। पाचन सुचारु रूप से होता है और कब्ज, गैस, डकारें, अल्सर आदि उदर-सम्बन्धी समस्त विकार दूर हो जाते हैं। भूख अच्छी लगती है।
- मोटापा, मधुमेह एवं मूत्ररोग ठीक होते हैं। पेशाब में जलन कम होती है। बहुमूत्र का होना इस क्रिया से बन्द हो जाता है।

एक्यूप्रेशर चिकित्सा

मानव-शरीर में स्थित विशेष बिन्दुओं पर विधिवत् दवाव डालकर रोग-निवारण करने की पद्धति का नाम एक्यूप्रेशर है। 'एक्यूप्रेशर' शब्द का अर्थ है दबाव। इस पद्धति द्वारा शरीर के निश्चित विशिष्ट बिन्दुओं पर आवश्यक दबाव डालकर विविध रोगों का चामत्कारिक रूप से उपचार किया जाता है।

एक्यूप्रेशर का सिद्धान्त :

इस पद्धति के अनुसार प्रत्येक रोग का उपचार शरीर को शारीरिक एवं भावनात्मक रूप से संगठित इकाई (Unit) मानकर किया जाता है। एक्यूप्रेशर-पद्धति में मनुष्य देह को शारीरिक एवं भावनात्मक दृष्टि से एक अभिन्न इकाई माना जाता है।

दूसरा प्रमुख सिद्धान्त है कि सभी रक्त-संचार करनेवाली नाड़ियों, स्नायु-संस्थान एवं ग्रन्थियों के मुख्य केन्द्र हथेली एवं पैरों के तलवों में स्थित होते हैं। इस पद्धति द्वारा विभिन्न स्थानों पर अवस्थित रोग-निदान-केन्द्रों पर दबाव डालकर वहाँ से ऊर्जा को प्रेषित कर समस्त नाड़ियों, स्नायु-संस्थान एवं ग्रन्थियों को ऊर्जा एवं आरोग्य प्रदान किया जाता है। असन्तुलित-असंयमित आहार (खान-पान), आलस्य-प्रमाद, निद्रा एवं ब्रह्मचर्य से सम्बन्धित नियमों के उल्लंघन से शरीर में विजातीय तत्त्व संगृहीत हो जाते हैं तथा आसन-प्राणायामादि के अभाव में अंगों में शिथिलता आने लगती है, मांसपेशियाँ मन्द पड़ जाती है, हाथ-पैर एवं मेरुदण्ड की हड्डियाँ भी अपना स्थान छोड़ने लगती है। सम्पूर्ण स्नायु-संस्थान की क्रियाशीलता धीरे-धीरे घटने लगती है। शारीरिक अंगों में रक्त-संचार कम हो जाता है। रक्त के अन्दर जमा रासायनिक तत्त्व, अपद्रव्य, विजातीय तत्त्व इन अलग हुए जोड़ों के आसपास जमा होने लगते हैं। जितने अधिक विकार जमा होते जाते हैं, उतने ही रोग शरीर में पैदा होने लगते हैं। शरीर के जिन अंगों की जैसे ही क्रियाशीलता घटती है, वैसे ही हाथ की हथेली तथा पैरों के तलवों में स्थित उससे सम्बन्धित बिन्दुओं में भी अवरोध उत्पन्न हो जाता है तथा इन बिन्दुओं पर कुछ क्रिस्टल (बहुत सूक्ष्म रासायनिक पदार्थ, अर्थात् कण) जमा हो जाते हैं, जिसके कारण सम्बन्धित अंगों में रक्त-प्रवाह ठीक से नहीं हो पाता। एक्यूपेशर द्वारा इन दबाव-बिन्दुओं पर प्रेशर डालकर जमा हुए क्रिस्टल्स को नष्ट किया जाता है, जिससे रक्त-पवाह के नियमित होने से रोगग्रस्त अंग नीरोग हो जाते हैं। एक अन्य मत के अनुसार हमारा शरीर पंचतत्त्व का समवाय है। इन पाँच तत्त्वों-पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल एवं आकाश का संचालन विद्युतीय शक्ति करती है, जिसे बायो-इलेक्ट्रिसिटी (Bio-electricity) अथवा बायो एनर्जी (Bio-energy) कहते हैं। प्रसिद्ध एक्यूप्रेशर चिकित्सक एफ० एम० धेस्टन (The Healing Benefits of Acupressure) के अनुसार, हाथों, पैरों तथा शरीर के

विभिन्न भागों पर स्थित केन्द्र, जहाँ दबाने से पीड़ा अनुभव करते हैं, वहाँ से सम्बन्धित अंगों से विद्युत् लीक (Leak) होती है, अर्थात् शरीर से बाहर निकलती है। इसके परिणामस्वरूप सम्बन्धित अंगों में किसी न किसी प्रकार का विकार या रोग आ जाता है। जब हम इन केन्द्रों पर प्रेशर देते हैं, तब विद्युत् का बाहर निकलना बन्द हो जाता है। लीकेज के बन्द होने से विद्युतीय शक्ति का सम्बन्धित अंगों में प्रवाह सामान्य हो जाता है और उनमें आये हुए रोग या विकार दूर हो जाते हैं।

एक्यूप्रेशर द्वारा शरीर पर पड़नेवाले मुख्य प्रभाव:

- एक्यूप्रेशर-पद्धति द्वारा शरीर के विजातीय तत्त्वों को बाहर किया जाता है तथा आवश्यक तत्त्वों को शरीर की ही आन्तरिक रोग-निरोधक प्रणाली द्वारा पैदा किया जाता है।
- यह विधि शरीर के विद्युतीय शक्तियों को जागृत कर शक्ति, ऊर्जा एवं स्फूर्ति पैदा करती है।
- यह शरीर के समस्त मांसपेशीय तन्तुओं (muscular tissues) में लचक पैदा करती है।
- यह अस्थि-संस्थान (bones system) तथा शरीर के महत्त्वपूर्ण भाग मेरुदण्ड में आई हुई विकृतियों, (दर्द आदि) को दूर करती है।
- एक्यूप्रेशर स्नायु-संस्थान (Nervous system) में आई हुई विकृतियों को दूर करने में पूर्ण सहयोगी है।
- इस पद्धति द्वारा थॉयरायड, पिच्युटरी, पीनियल, पेन्क्रियाज आदि समस्त ग्रन्थियों (endocrine glands) के कार्यों को नियमित किया जा सकता है।
- एक्यूप्रेशर द्वारा शरीर के आन्तरिक अंगों (internal organs) के सामान्य रूप से चलनेवाले कार्यों में पर्याप्त सुधार लाया जा सकता है।

एक्यूप्रेशर : भारतीय विद्या:

एक्यूप्रेशर प्राचीन भारतीय गहरी मालिश का ही परिष्कृत रूप है, जिसका अर्थ है पैरों, हाथों, चेहरे तथा शरीर के कुछ खास केन्द्रों पर दबाव डालकर रोगों को दूर करना। एक्यूप्रेशर का ज्ञान चीन आदि देशों से भारत में आयातित नहीं किया गया है। वस्तुतः भारत की यात्रा पर आये चीनी यात्री ही भारतीय आयुर्वेद-ग्रन्थों को चीन ले गये और एक्यूप्रेशर को अपनी विद्या बताकर विश्वभर में प्रचारित कर दिया। इस विद्या को विदेशी मानना दुर्भाग्यपूर्ण है। एक्यूप्रेशर का भारतीय ग्रन्थों में खासा वर्णन है। भारतीय स्त्रियाँ पाजेब, नुपूर, कड़े, लाकेट, टीका, झूमर, बालियाँ, लोंग, तगड़ी आदि क्यों युगों से पहनती आ रही हैं, यह जानने की जरूरत है। स्त्री-पुरुष एक अरसे से अंगूठियाँ पहनते रहे हैं। यह सब एक्यूप्रेशर के फलस्वरूप ही सम्भव हो पाया है।

एक्यूप्रेशर द्वारा मुख्य रोगों का उपचार:

यद्यपि एक्यूप्रेशर की समस्त रोगों में एक विशेष उपयोगिता है, यह एक हानिरहित पद्धति है तथा इसे अन्य चिकित्सा-पद्धतियों के साथ भी अपनाया जा सकता है। परन्तु कुछ ऐसे रोग, जिनका उपचार एक्यूप्रेशर द्वारा सफलतापूर्वक किया जा सकता है, अधोलिखित हैं :

- विश्व-स्वास्थ्य-संगठन (वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गेनाइजेशन : W.H.O.) ने एक्यूप्रेशर तथा एक्यूपंक्चर चिकित्सा-पद्धतियों की उपयोगिता को स्वीकारते हुए इस चिकित्सा-पद्धति को साइटिका, सर्वाइकल, स्पोण्डोलाइटिस आदि मेरुदण्ड के समस्त रोगों, कन्धों की अकड़न (फ्रोजन सोल्डर), घुटनों का दर्द, बिस्तर में मूत्रत्याग, आँतों के घाव (अल्सर), पेचिश, कब्ज, सिर-दर्द, माइग्रेन, नस-नाड़ियों की विकृति, पेट में गैस बनना, एसिडिटी, गले की सूजन तथा पीड़ा, टॉन्सिल्स, साइनुसाइटिस, ब्राँकाइटिस, दमा, आँख, कान एवं गले के रोग, दाँतों का दर्द, लकवा, मिनीयर्स डिजीज आदि रोगों में अधिक उपयोगी स्वीकार किया है।

- आश्रम द्वारा संचालित ब्रह्मकल्प औषधालय में भी हमने लाखों लोगों पर एक्यूप्रेशर-चिकित्सा के सफल प्रयोग उल्लिखित रोगों पर किये हैं। कई बार तो आश्चर्यजनक रूप से रोगियों को लाभ होता है। भयंकर सर्वाइकल, स्पोण्डोलाइटिस की अवस्था में जब गर्दन का हिलाना भी सम्भव नहीं हो, तब हमने यहाँ लोगों को मात्र ५-१० मिनट में पूर्ण स्वस्थ किया है। वर्षों पुराना कन्धों का दर्द, जिसमें कई बार तो हाथ हिलाना तथा ऊपर उठाना भी सम्भव नहीं होता, ऐसी स्थिति में भी ५-१० मिनट में पूर्ण रूपेण ठीक किया है। हमारे विचार से सभी प्रकार की शारीरिक पीड़ाओं, जोड़ों या कमर आदि दर्द में, नस-नाड़ियों की विकृति आदि में एक्यूप्रेशर से जितना शीघ्र लाभ हो जाता है, उतना किसी अन्य पद्धति से नहीं हो सकता।

- हृदयशूल में भी एक्यूप्रेशर से तुरन्त लाभ होता है तथा हृदय की शिराओं में आया हुआ अवरोध एवं अन्य विकार भी एक्यूप्रेशर द्वारा दूर होते हैं।

- पेट के रोग, मधुमेह एवं मस्तिष्कीय रोगों में भी यह पद्धति प्रभावशाली है।

- रोगोपचार के साथ-साथ हम एक्यूप्रेशर को रोग-निदान (डीजीज डाइग्नोज) के लिए भी महत्त्वपूर्ण मानते हैं। इस पद्धति द्वारा विभिन्न प्रतिबिम्ब-केन्द्रों पर दबाव डालकर यह आसानी से पता लगाया जा सकता है कि शरीर के कौन-कौन से अंग अथवा ग्रन्थियाँ अपना कार्य भली भाँति नहीं कर पा रहे हैं। कई बार प्रयोगशाला

के परीक्षण भी रोग का ठीक-ठीक कारण जानने में सहायता नहीं कर पाते। ऐसी स्थिति में प्रतिबिम्ब-केन्द्रों के परीक्षण से केवल कुछ ही पलों में यह पता लगाया जा सकता है कि शरीर के किस भाग में क्या विकार है। अतः इस स्थिति में प्रतिबिम्ब-केन्द्रों को रोगों का दर्पण भी कहा जाता है।

प्रतिबिम्ब-केन्द्रों की जाँच तथा प्रेशर देने की विधि:

- एक्यूप्रेशर अंगूठों, अँगुलियों, लकड़ी अथवा प्लास्टिक के उपकरण आदि किसी भी उपयुक्त चीज से सुविधानुसार किया जा सकता है।
- बिन्दुओं पर न तो बहुत कम और न ही बहुत अधिक जोर से दबाव डालें, अपितु मध्यम बल का प्रयोग करते हुए प्रेशर डालना चाहिए। ऐसा करते हुए यदि किसी को प्रेशर प्वाइण्ट्स पर असहनीय दर्द हो तो समझना चाहिए कि उस केन्द्र से सम्बन्धित अंग में कोई विकार या रोग है। जिन केन्द्रों पर दबाव डालने से अधिक पीड़ा नहीं होती तो समझना चाहिए कि वे अंग स्वस्थ हैं।
- प्रतिबिम्ब-केन्द्रों पर प्रेशर देने से हाथों एवं पैरों की रक्तवाहिकाओं में संगृहीत अपद्रव्य एवं विजातीय तत्त्व के क्रिस्टल धीरे-धीरे अपना स्थान छोड़कर रक्त-प्रवाह में मिल जाते हैं और फिर पसीने या गुर्दों की प्रणाली द्वारा शरीर से बाहर निकल जाते हैं। इसलिए एक्यूप्रेशर करते हुए इच्छित बिन्दुओं को दबाने के बाद अन्त में गुर्दों के केन्द्रों पर एक दो मिनट अवश्य ही दबाव डालना चाहिए। प्रेशर से जैसे-जैसे क्रिस्टल अपना स्थान छोड़ते हैं, वैसे-वैसे रोग का वेग भी कम होता जाता है। जैसे-जैसे रोग का वेग कम होता जाता है, वैसे-वैसे ही प्रेशर देने से दबाव बिन्दुओं पर भी दर्द कम होता जाता है और रोगी स्वयं भी अपने रोग में लाभ अनुभव करने लगता है। कुछ दिन निरन्तर करने से रोग पूरी तरह दूर हो जाता है और प्रेशर देने में दर्द भी या तो बिल्कुल नहीं होता या बहुत सामान्य-सा रह जाता है।
- अधिकांश व्यक्तियों को प्रारम्भ में प्रतिबिम्ब-केन्द्रों पर दबाव डालने से जैसे ही वहाँ स्थित क्रिस्टल प्रेशर के कारण क्रिया में आते हैं और अपना स्थान छोड़ते हैं, तो उन बिन्दुओं पर काफी दर्द तथा सूजन भी हो जाती है। ऐसे में घबराना नहीं चाहिए, यह एक स्वाभाविक क्रिया है। ऐसा होने पर गर्म पानी में नमक डालकर उन बिन्दुओं की सिंकाई कर देने से वहाँ का दर्द एवं सूजन भी दूर हो जाती है।

एक्यूप्रेशर का समय:

सामान्य रूप से किसी भी समय एक्यूप्रेशर किया जा सकता है। परन्तु आमाशय, अन्त्र, यकृत् तथा पित्ताशय आदि के लिए प्रेशर देना हो तो खाने से पहले या खाने से दो-तीन घण्टे बाद ही देना चाहिए। भोजन के तुरन्त बाद चूँकि शरीर की पूरी ऊर्जा भोजन के पाचन में लगी होती है, इसलिए एक्यूप्रेशर खाने से पहले ही करना

सर्वोत्तम है। हल्का दुग्धपान या फलाहार करने के थोड़ी देर बाद भी एक्यूप्रेशर किया जा सकता है।

प्रेशर की अवधि:

रोगी के रोगानुसार निर्दिष्ट बिन्दुओं पर ३० सेकण्ड से २ मिनट तक एक केन्द्र पर दबाव डालना चाहिए। किसी भी बिन्दु पर प्रेशर देते हुए रोगी की सहन-शक्ति का भी पूरा ध्यान रखना चाहिए, अन्यथा कई बार व्यक्ति मूर्च्छित भी हो जाता है। एक ही बिन्दु को लगातार नहीं दबाते रहना चाहिए। अपितु बदल-बदल कर अलग-अलग बिन्दुओं पर बारी-बारी से प्रेशर देना चाहिए। दिन में सामान्य रूप से दो बार प्रातः सायं प्रेशर देना चाहिए। विशेष दर्द आदि की स्थिति में दिन में तीन बार भी एक्यूप्रेशर किया जा सकता है।

प्रेशर-बिन्दुओं की संख्या:

डा. चु. लि. एन द्वारा लिखित 'चेन चियु सु एह' (अर्वाचीन एक्यूप्रेशर) नामक ग्रन्थ चीन में इस विषय का अधिकृत प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। इसमें एक्यूप्रेशर के ६६९ बिन्दुओं की सूची दी गई है। कुछ अन्य सारणी में १००० बिन्दु दरसाये गये हैं। किन्तु दैनिक प्रयोग में मुख्य रूप से लगभग १०० बिन्दु ही अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

विविध रोगों में उपयोगी शरीर के विभिन्न भागों में स्थित एक्यूप्रेशर उपचार-केन्द्रों (बिन्दुओं) को आगे दिये गये चित्रों में दरसाया गया है। ये चित्र डॉ० अत्तर सिंहजी की पुस्तक 'एक्यूप्रेशर प्राकृतिक उपचार' से साभार संकलित हैं।

चौड़ाई के रूप में शरीर के तीन भाग
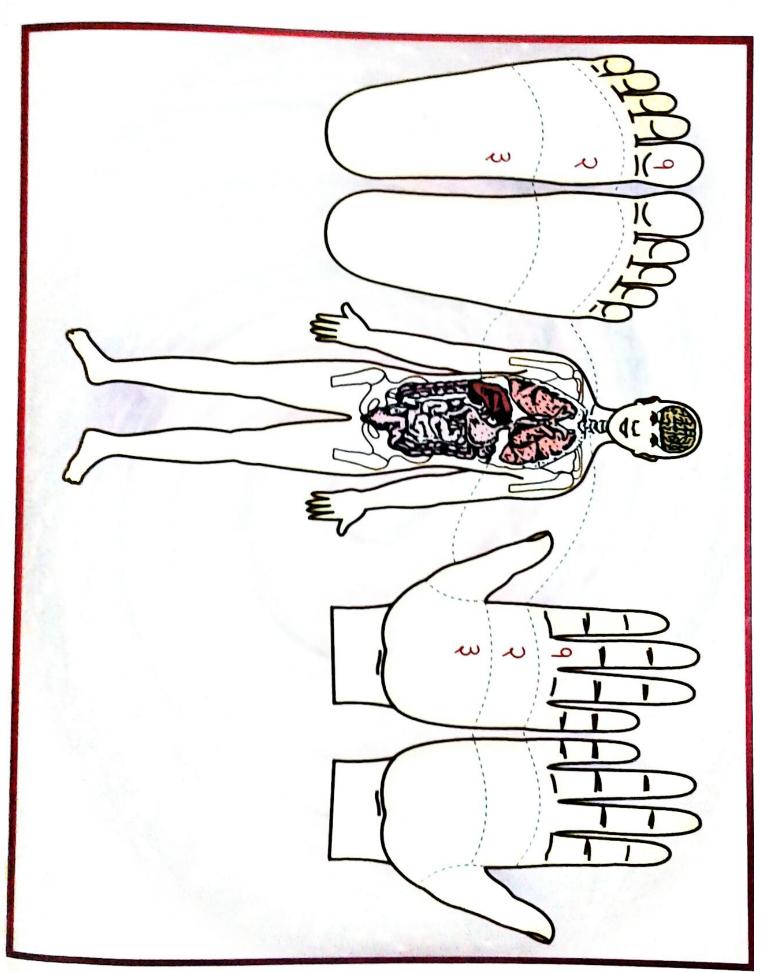
हाथों में स्थित मुख्य एक्यूप्रेशर प्रतिबिम्ब-केन्द्र
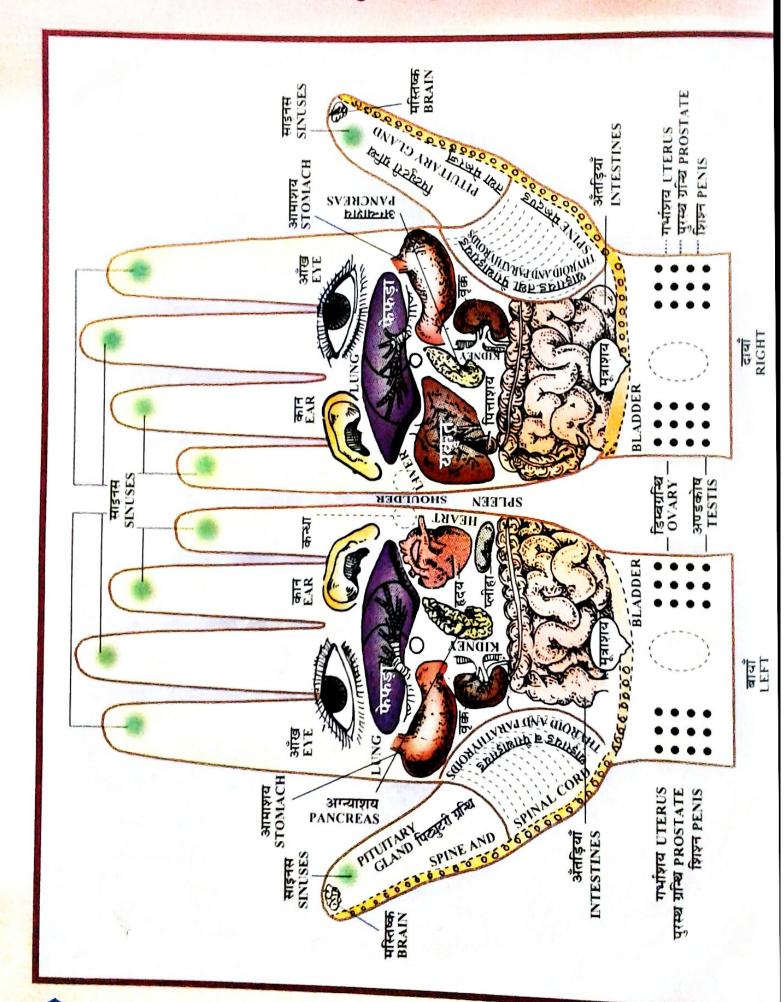
पैरों में स्थित मुख्य एक्यूप्रेशर प्रतिविम्ब-केन्द्र
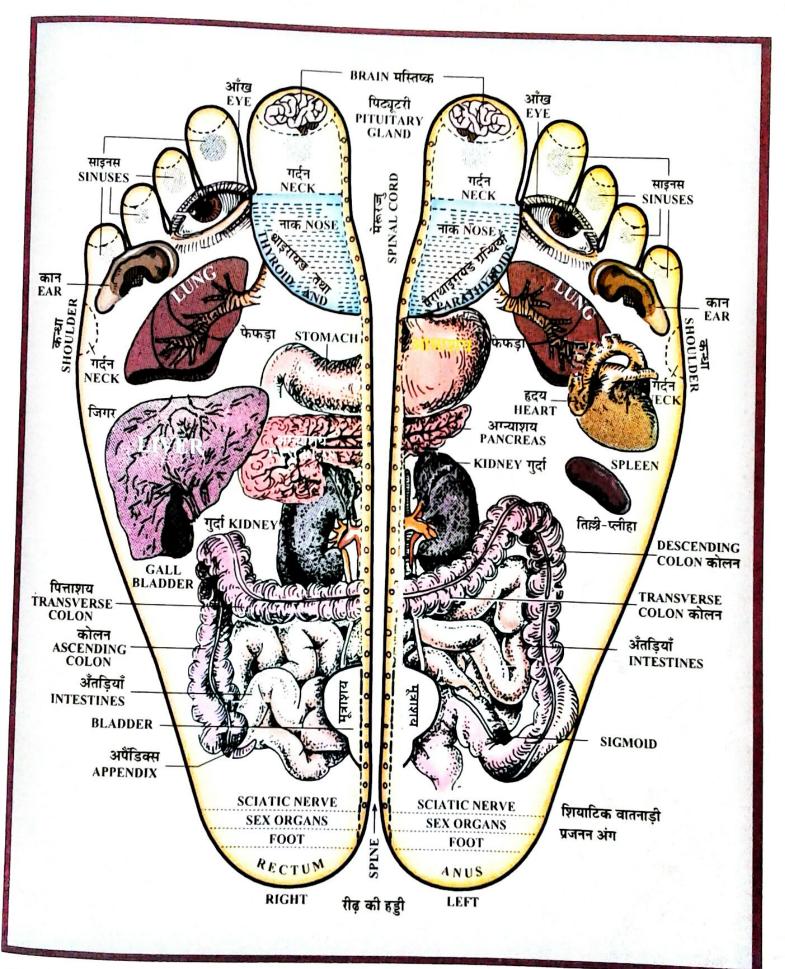
मस्तिष्क, स्नायु-संस्थान, रीढ़ की हड्डी, साइनस, आवाज, आँख, कान, गर्दन, गला, बगल, कन्धा, नितम्ब, घुटना तथा टाँग-सम्बन्धी, पैरों तथा हाथों में प्रतिबिम्ब-केन्द्र
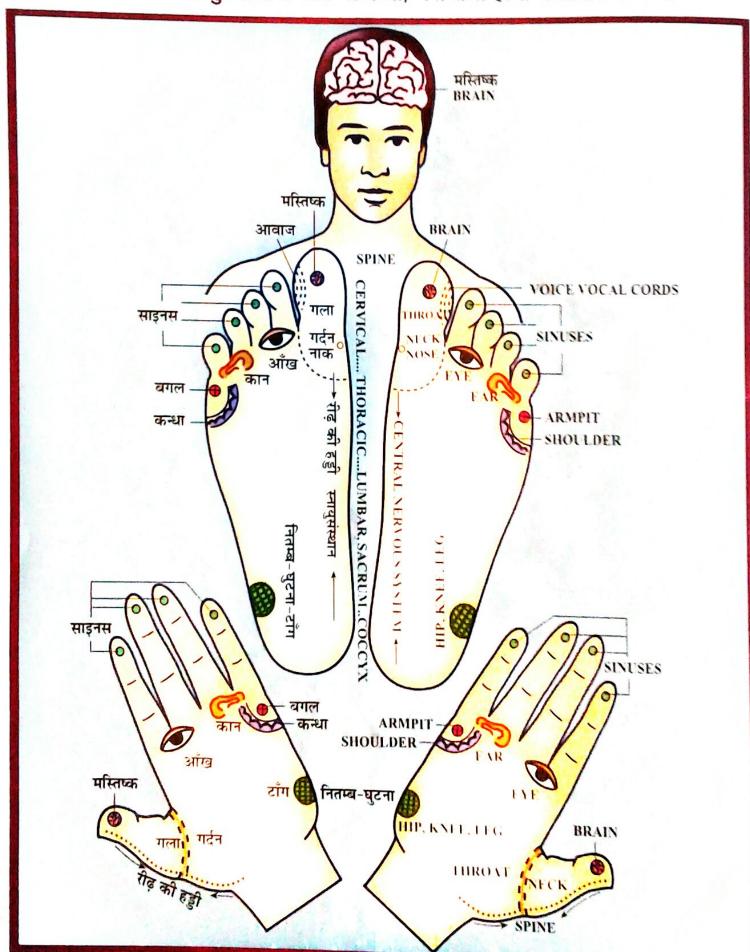
अन्तःस्रावी रसोत्पादक नलिकाहीन ग्रन्थियों (Endocrine System) की शरीर में स्थिति तथा उनसे सम्बन्धित पैरों तथा हाथों में प्रतिविम्ब-केन्द्र

PINEAL GLAND
PITUITARY GLAND पिट्यूटरी
थाइरॉयड तथा पैराथाइरायड ग्रन्थियाँ
THYROID AND PARATHYROIDS
थाइमस ग्रन्थि
GLAND THYMUS
आड्रेनल ग्रन्थियाँ
ADRENAL GLANDS
अग्न्याशय
ISLETS OF LANGERHANS IN THE PANCREAS
डिम्ब ग्रन्थियाँ
OVARIES IN FEMALES
अण्डकोष
TESTES IN MALES
PITUITARY GLAND
पिट्यूटरी
पीनियल
PINEAL
थायरॉयड
पैराथाइरॉयड
THYROID AND PARATHYROID
डिम्ब ग्रन्थि
अण्डकोष
थायमस
THYMUS
आड्रेनल
ADRENAL
अग्न्याशय
PANCREAS
TESTICLE
OVARY
प्रजनन ग्रन्थियाँ
SEX GLANDS
थाइमस
आड्रेनल
अग्न्याशय
पीनियल
अण्डकोष
THYMUS
ADRENAL
PANCREAS
THYROID PARATHYROIDS
PITUITARY
PINEAL
पिट्यूटरी ग्रन्थि
डिम्ब ग्रन्थि
OVARY TESTICLE
थाइरायड पैराथाइरॉयड

हृदय (Heart) तथा प्लीहा (Spleen) की शरीर में स्थिति तथा उनसे सम्बन्धित पैरों तथा हाथों में प्रतिबिम्ब-केन्द्र

हृदय
HEART

तिल्ली-प्लीहा
SPLEEN

हृदय
HEART

तिल्ली-प्लीहा
SPLEEN

RIGHT
LEFT

हृदय
HEART

तिल्ली-प्लीहा
SPLEEN

RIGHT
LEFT
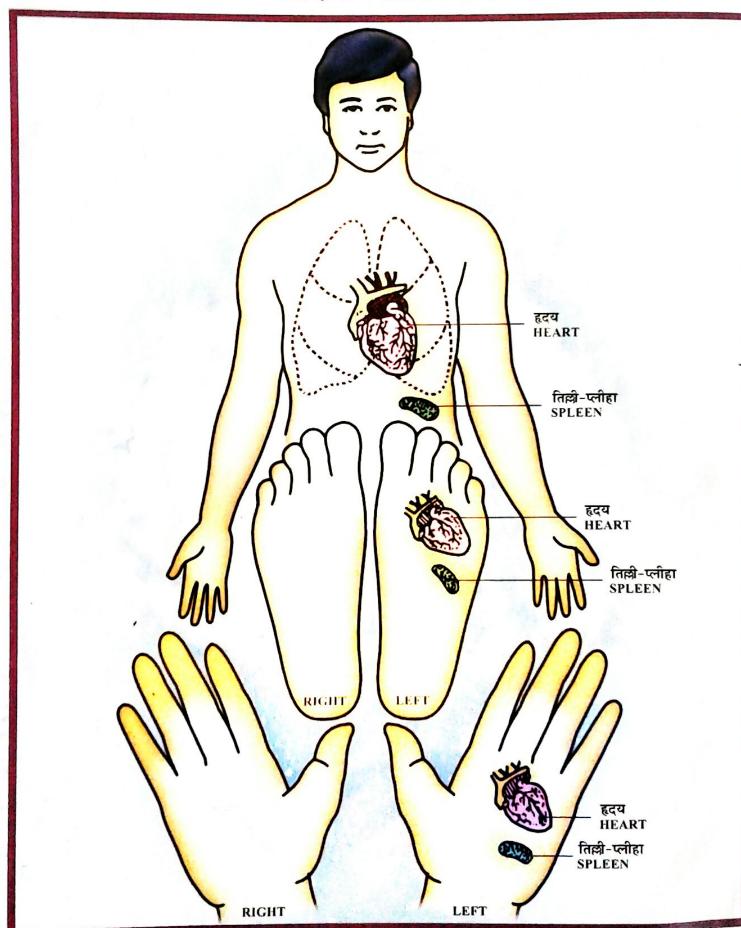
श्वास-प्रणाली (Respiratory System) के विभिन्न अवयवों की शरीर में स्थिति तथा उनसे सम्बन्धित पैरों तथा हाथों में प्रतिबिम्ब-केन्द्र

पाचनतन्त्र (Digestive System) के विभिन्न अवयवों - जिगर, पित्ताशय, आमाशय तथा आँतों इत्यादि की शरीर में स्थिति तथा उनसे सम्बन्धित पैरों तथा हाथों में प्रतिबिम्ब-केन्द्र

TONGUE
ORAL PART OF PHARYNX
LARYNX
ग्रासनली
OESOPHAGUS
जिगर
LIVER
पित्ताशय
GALL BLADDER
DIAPHRAGM
DIAPHRAGM
आमाशय STOMACH
PANCREAS (behind STOMACH)
TRANSVERSE COLON
छोटी आँत
SMALL INTESTINES
ASCENDING COLON
APPENDIX
DESCENDING COLON
RECTUM

जिगर
LIVER
आमाशय
पित्ताशय
GALL BLADDER
INTESTINES
अंतड़ियाँ
आमाशय
STOMACH
RIGHT
LEFT

STOMACH
INTESTINES
LEFT
जिगर
आमाशय
पित्ताशय
अंतड़ियाँ
RIGHT
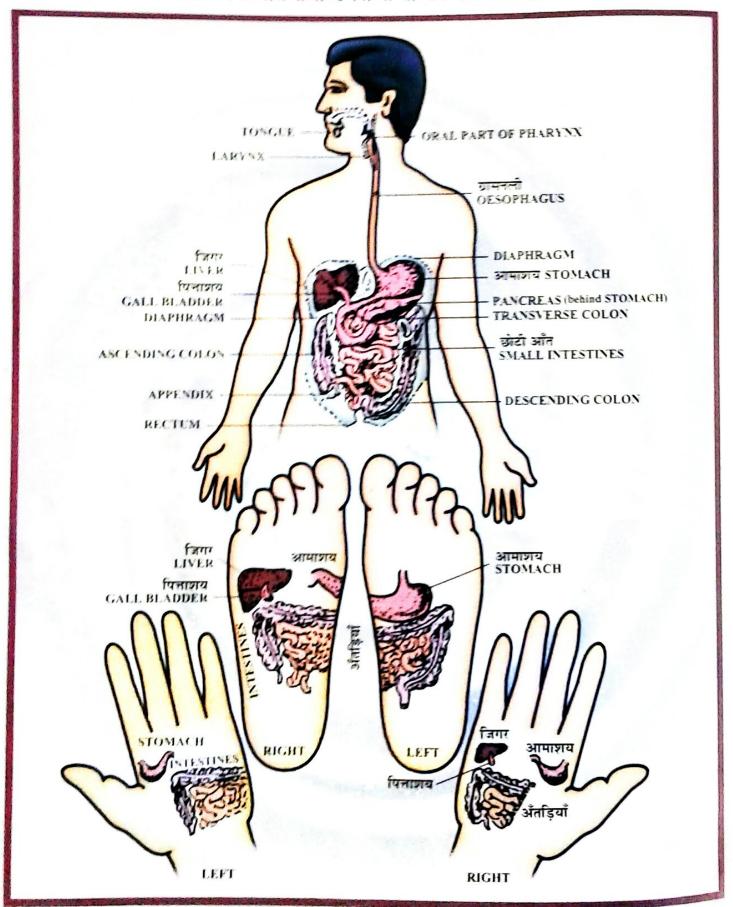
मूत्र-प्रणाली (Urinary System) के विभिन्न अवयवों– गुर्दों, गवीनियों तथा मूत्राशय की शरीर में स्थिति तथा उनसे सम्बन्धित पैरों तथा हाथों में प्रतिबिम्ब-केन्द्र
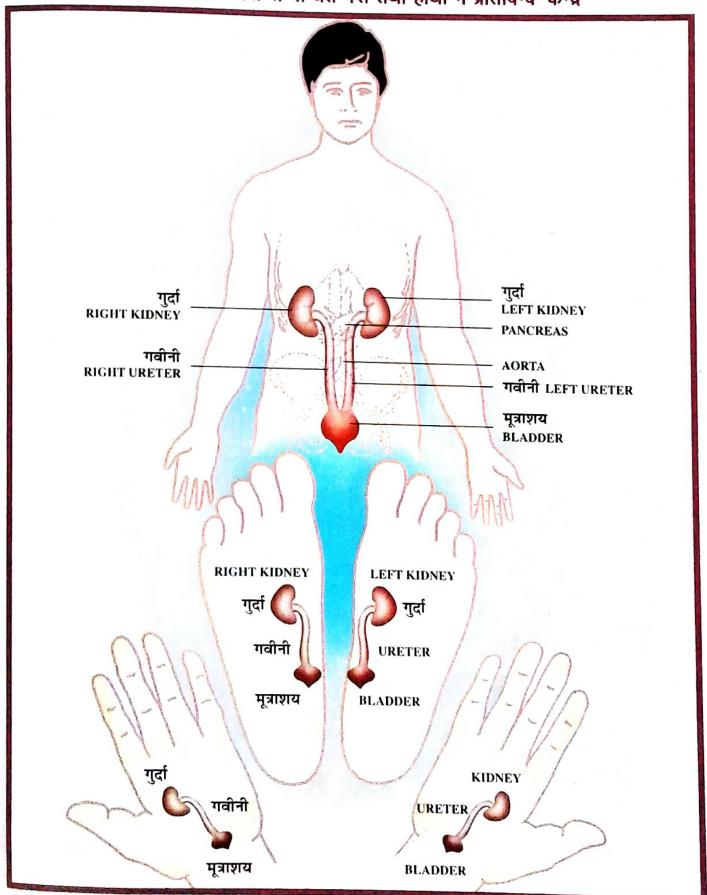
स्त्रियों तथा पुरुषों के विभिन्न प्रजनन- अंगों (Reproductive System) की शरीर में स्थिति तथा उनसे सम्बन्धित पैरों के ऊपर, तलवों, हथेलियों तथा कलाई पर प्रतिबिम्ब-केन्द्र
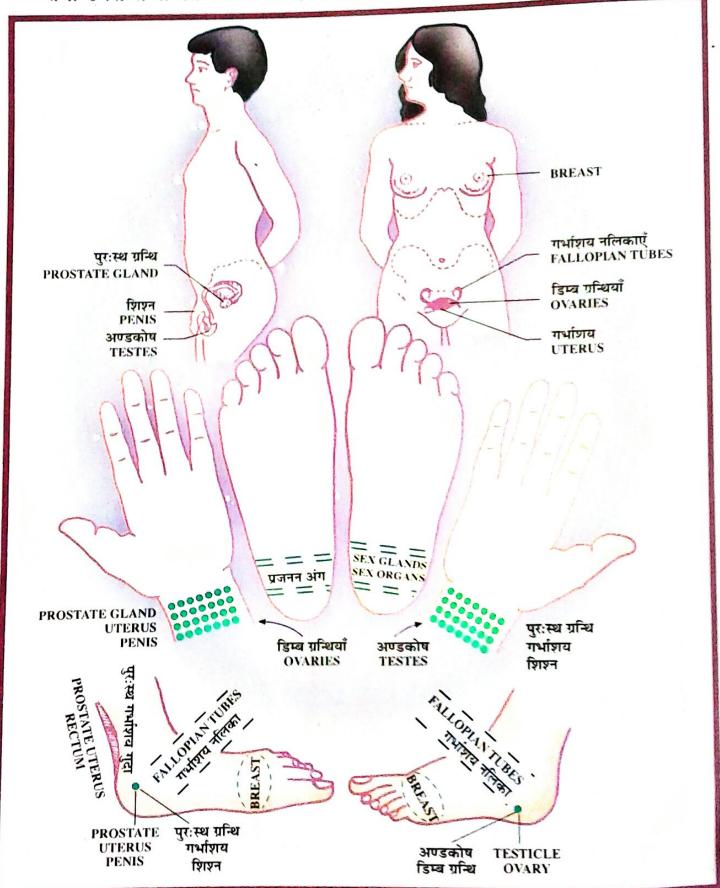
पैरों के ऊपरी भाग पर विभिन्न प्रतिबिम्ब-केन्द्र
(दोनों पैरों पर समान केन्द्र)

INSIDE OF FOOT
वैरीकोज वेनस
मूत्रतंत्र के रोग
URINARY SYSTEM
शियाटिक वातनाड़ी
VARICOSE VEINS
SCIATIC NERVE
LYMPH GLANDS
हृदय-कपाट रोग
VALVULAR DISORDERS
आँख
पीठ
श्वास प्रणाली
छाती फेफड़ा
गर्दन NECK
अँगूठा
THUMB
मूत्राशय
BLADDER
DRAINAGE OF LYMPHATIC SYSTEM

OUTSIDE OF FOOT
वैरीकोज वेनस
VARICOSE VEINS
शियाटिक वातनाड़ी
SCIATIC NERVE
LYMPH GLANDS
EYE
BACK
BRONCHUS
LUNG
SHOULDER BLADE
THROAT
गला • NOSE
सिर
HEAD
एड़ी HEEL
नितम्ब घुटना टाँग कुहनी बाजू कन्धा
BUTTOCK KNEE LEG ELBOW ARM SHOULDER

LOW BLOOD PRESSURE
लो ब्लड प्रेशर
TOOTHACHE
हृदय
HEART
LYMPH GLANDS
छाती फेफड़ा
श्वास प्रणाली
कुहनी
पीठ
रीढ़ की हड्डी, स्नायुसंस्थान
लसीकातंत्र
LUMBAR REGION
LEFT

FACIAL REGION
चेहरा

सिर	HEAD
आँख	EYE
कान	EAR
गर्दन	NECK
गला	THROAT
कन्धा	SHOULDER
छाती	CHEST
सिरदर्द	HEADACHE
माइग्रेन	MIGRAINE
जुकाम	COLD
नजला	

दाँत दर्द
लो ब्लड प्रेशर
हृदय
HEART
NERVOUS SYSTEM
SPINE
लसीकातंत्र
LUNG
BRONCHUS
ELBOW
BACK
LYMPHATIC SYSTEM
LOWER BACK
RIGHT

हाथों के ऊपरी भाग पर विभिन्न प्रतिबिम्ब-केन्द्र दोनों हाथों पर समान केन्द्र

जिगर, हृदय तथा तिल्ली के प्रतिबिम्ब-केन्द्रों के अतिरिक्त दोनों पैरों में एक्यूप्रेशर रोगोपचार-केन्द्र समान

रोग के अनुसार प्रत्येक केन्द्र पर हाथ के अंगूठे या अंगुली से ५–१० सेकण्ड तक, हल्का पर गहरा प्रेशर डालें।
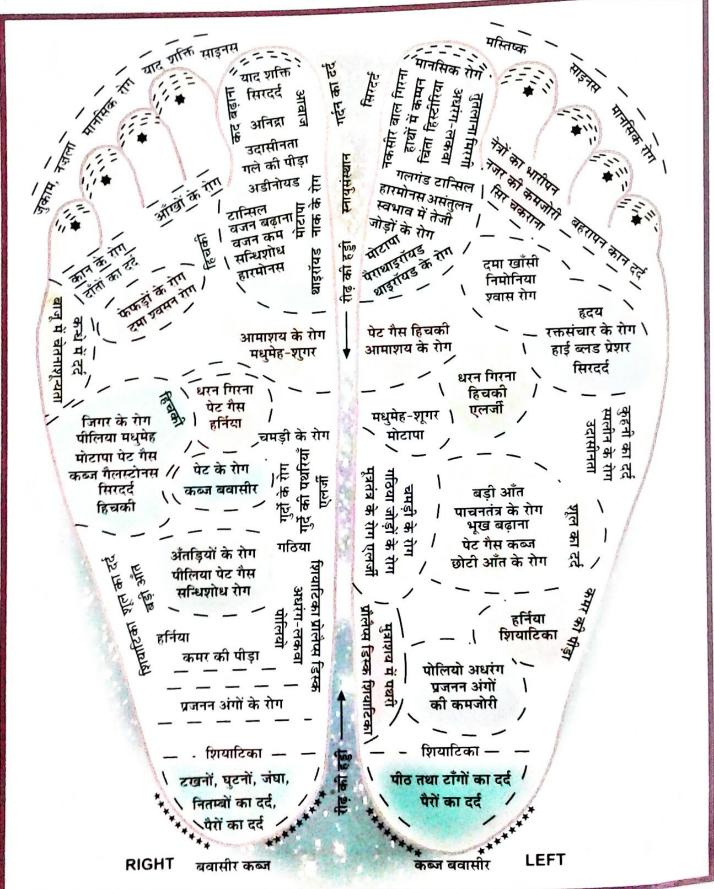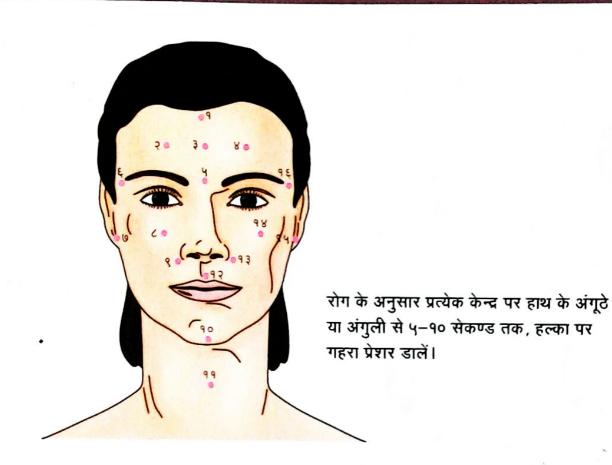
१.	1.	मासिकधर्म विकार (menstrual troubles)
२.	2.	4, 8, 9, 13, तथा 14 नजला सिर का भारीपन (catarrh-headcold)
३.	3.	पेड़ू–कोख विकार (pelvic troubles)
४.	5.	सिर दर्द, चक्कर आना (headache, giddiness)
५.	6.	तथा तीव्र सिर दर्द (severe headache)
६.	7.	तथा निद्राविघ्न (sleep disturbances) तथा पक्षाघात (paralysis)
७.	10.	रजोनिवृत्ति के रोग (menopause complaints)
८.	11.	गला, खाँसी, श्वास लेने में कठिनाई तथा दमा (throat, cough, dyspnea and asthma)
९.	12.	दाँत का दर्द (toothache)

रोग के अनुसार प्रत्येक केन्द्र पर हाथ के अंगूठे या अंगुली से ५–१० सेकण्ड तक, हल्का पर गहरा प्रेशर डालें।

उपचार केन्द्र	रोग	उपचार केन्द्र	रोग
१	स्मरण शक्ति	११	अग्न्याशय (Pancreas) के रोग
२	सियाटिका	१२,१३	दायाँ फेफड़ा से सम्बन्धित रोग
३,२५	तथा गैस	१५, १८	लिंग उत्तेजना
		१६, १७	पेट (abdomen) के रोग
४	जिगर के रोग	१९,२०	बायाँ फेफड़ा से सम्बन्धित रोग
५	खून का दौरा	२३	गुर्दों के रोग
६,२४	तथा गलगण्ड	२६	प्लीहा के रोग
		२७	हृदय–रोग
७	पक्षाघात–लकवा	२८	सियाटिका
८	गुर्दों के रोग	२९	तेज सिरदर्द
९,१४,२२	कब्ज	३०	प्रजनन अंग से सम्बन्धित रोग
१०, २१	अँतड़ियों के रोग	३१	सिरदर्द

रोग के अनुसार प्रत्येक केन्द्र पर हाथ के अंगूठे या अंगुली से ५–१० सेकण्ड तक, हल्का पर गहरा प्रेशर डालें।
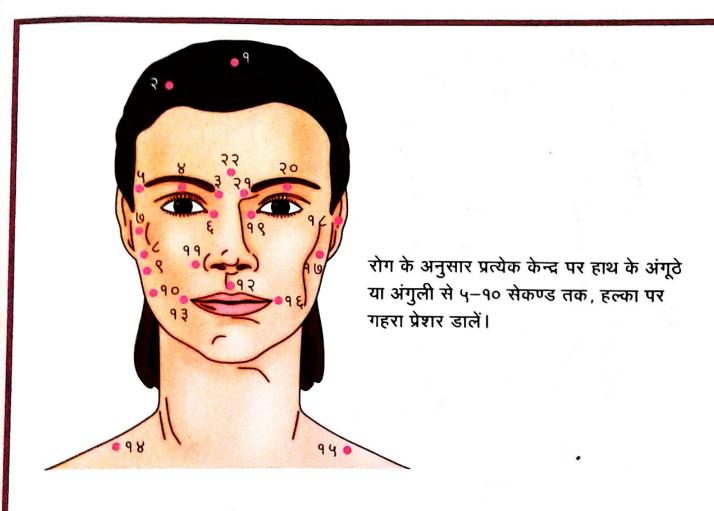
उपचार केन्द्र	रोग	उपचार केन्द्र	रोग
१	बवासीर, मूत्राशय के रोग, सोते हुये पेशाब निकल जाना	१२	पक्षाघात, लकवा, छींकें आना, बेहोशी, मिर्गी
२	दो–दो वस्तुएँ दिखना (double vision diplopia)	१३,१६	दाँत दर्द, मानसिक तनाव
३, २१	मस्तिष्क के रोग नजला, अनिद्रा	१८	उच्च रक्तचाप, बाजू की जकड़न व दर्द
४, २०	सियाटिका, मस्तिष्क, जिगर तथा पित्ताशय के रोग	२२	आँख, पैर तथा आमाशय के रोग
५, ६,१४,१५,१९	आँखों के रोग		
७	कर्णनाद		
८,१०	मानसिक तनाव व पक्षाघात		
९,१७	दाँतों का दर्द		
११	नाक में रुकावट, नाक का बहना		

COCCYX
SACRAL
LUMBAR
THORACIC
CERVICAL

कान के बिन्दुओं का रोगोपचार सम्बन्धी विवरण

उपचार केन्द्र	रोग
१.	टान्सिल
२.	एपेंडिक्स
३.	एड़ी
४.	घुटने का जोड़
५.	उच्च रक्तचाप
६.	दमा
७.	नितम्ब
८.	सियाटिका वातनाड़ी
९.	कूल्हा
१०.	मूत्राशय
११.	गवीनी
१२.	गुर्दा
१३.	बड़ी आँत्र
१४.	मलाशय
१५.	छोटी आँत्र
१६.	आमाशय
१७.	श्वास प्रणाली
१८.	फेफड़ा
१९.	फेफड़ा
२०.	उच्च रक्तचाप
२१.	नाक का भीतरी भाग
२२.	आँख

उपचार केन्द्र	रोग
२३.	आँख
२४.	डिम्बग्रन्थि
२५.	आँख
२६.	कान का भीतरी भाग
२७.	ऊपरी जबड़ा
२८.	निचला जबड़ा
२९.	फेफड़ा
३०.	अण्डकोश
३१.	दमा
३२.	मस्तिष्क
३३.	दाँत दर्द
३४.	जिगर
३५.	प्लीहा
३६.	अग्न्याशय, पित्ताशय
३७.	गर्दन
३८.	कधो का जोड़
३९.	कन्धा
४०.	पेट
४१.	कुहनी
४२.	घुटना
४३.	नितम्ब का जोड़

एक्यूप्रेशर द्वारा व्यक्ति स्वयं का इस प्रकार उपचार कर सकता है

एक्यूप्रेशर देने की विभिन्न पद्धतियाँ

अँगूठे के साथ प्रेशर देने का ठीक ढंग
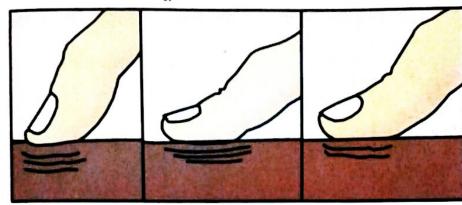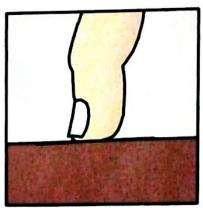
अँगूठा खड़ा करके प्रेशर नहीं देना चाहिए।
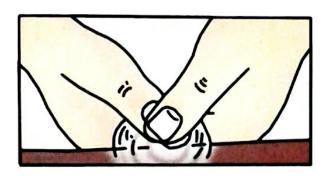
अधिक दबाव देने के लिए एक अँगूठे पर दूसरा अँगूठा रख के प्रेशर देना चाहिए।
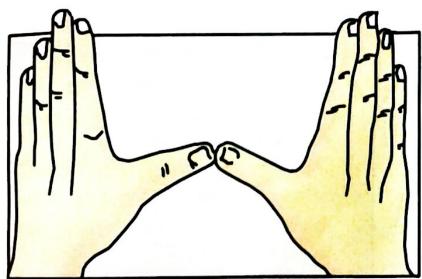
कुछ केन्द्रों, विशेषकर पीठ कर दोनों अँगूठों के साथ प्रेशर दें।

कुछ केन्द्रों यथा पेट पर हाथ की तीन अँगुलियों के साथ प्रेशर दें। पेट पर प्रेशर दोनों हाथों की अँगुलियों से एक साथ देना चाहिए।

पिंजरे से निकलकर बनारस और वहाँ से जापान सुरक्षित जा चुका था। यही यति किशोरचन्द संन्यास लेकर बाद में कृपालु महाराज कहलाये। पराधीन भारत में स्वाधीनता की अलख जगाने के लिए उन्होंने 'विश्वज्ञान' शीर्षक से मासिक पत्रिका का प्रकाशन भी किया। स्वाधीनता-सेनानी और क्रान्तिकारी का जीवन जीनेवाले यति किशोरचन्दजी की योग एवं अध्यात्म में रुचि प्रशस्त हुई और वे एक सिद्ध योगी बने। सन् १९६८ ई० में वे इस संसार को अलविदा कह गये!

क्रान्ति, योगसाधना और अध्यात्म की पुण्यभूमि कृपालुबाग आश्रम का संचालन-कार्य महाराजजी के शिष्यों ने सँभाला। इसी परम्परा की एक कड़ी स्वामी श्रीशंकरदेवजी हैं, जिनके योग्य शिष्य स्वामी श्रीरामदेवजी महाराज ने इस आश्रम को योग, आयुर्वेद, वैदिक संस्कृति की दिव्य ज्योति से समुज्ज्वल कर इसे देश-विदेश में, लोकमानस में, दिग्दिगन्त में विख्यात कर दिया है। सन् १९५५ ई० में स्थापित 'दिव्य योग मन्दिर ट्रस्ट' के माध्यम से स्वामी श्रीरामदेवजी महाराज ने अपने अभिन्न सहायकों एवं आत्मीयजनों यथा आचार्य कर्मवीरजी, आचार्य बालकृष्णजी, स्वामी मुक्तानन्दजी आदि के सहयोग से जिन विविध सेवा-प्रकल्पों को मूर्त रूप दिया है, उनसे भारतीय जनमानस गहराई तक प्रभावित हुआ और हो रहा है, जिसके फलस्वरूप समूचे भारत में वेद, योग, आयुर्वेद की त्रिवेणी प्रवाहित होने लगी है। इन सन्त आत्माओं के दिव्य प्रताप से करोड़ों लोग शारीरिक आरोग्य, मानसिक शान्ति, आत्मिक उन्नति, आध्यात्मिक विकास और बौद्धिक चेतना का लाभ उठा चुके हैं और उठा रहे हैं। स्वामी रामदेवजी के जीवन का तो एक-एक क्षण पुण्यकार्यों के महानुष्ठान में व्यतीत हो रहा है। धर्म, योग, अध्यात्म, समाज-सेवा, शिक्षा, लोक-कल्याण सभी क्षेत्रों में वे समान रूप से गतिमान हैं, फिर भी यह संन्यासी निरहंकार भाव से यह मानकर चल रहा है कि हम तो निमित्तमात्र बने हुए हैं और यह सब जो हो रहा है, जो होनेवाला है, वह सब प्रभु की दया, इच्छा का ही फलितार्थ है।

ट्रस्ट द्वारा संचालित सेवा-प्रकल्प

एक दशक से भी कम की अल्पावधि में 'दिव्य योग मन्दिर ट्रस्ट' ने अपने विविध सेवा-प्रकल्पों के माध्यम से सफलता के जो मील-पत्थर स्थापित किये हैं, उन्हें देखकर लोगों को लगने लगा है कि यह सब किसी दैवी चमत्कार से कम नहीं है। 'पतंजलि योगपीठ' के रूप में जो बहु-आयामी योजना स्वरूप धारण कर रही है, उसे देखकर तो लोगों को लग रहा है कि स्वामी रामदेवजी को निश्चय ही कोई दैवी सिद्धि प्राप्त है। वस्तुतः यह सब उस ईश-निष्ठा, समर्पण-भाव, सेवा-संकल्प, लोक-कल्याण की मंगल-भावना का चमत्कार है, जिससे स्वामी रामदेवजी महाराज सदा आवेष्टित रहते हैं, प्रेरित एवं सक्रिय रहते हैं। 'दिव्य योग मन्दिर ट्रस्ट' के विविध सेवा-प्रकल्पों का संक्षिप्त ब्यौरा इस प्रकार है :

योग-साधना एवं योग-चिकित्सा- शिविरों का आयोजन

पूज्यपाद स्वामी रामदेवजी के सान्निध्य में देश भर में आयोजित होनेवाले योग-साधना एवं योगचिकित्सा-शिविरों ने इस भ्रान्ति को मिटा दिया है कि योग केवल शारीरिक व्यायाम-मात्र है। पूज्यपाद स्वामीजी ने योग को शारीरिक आरोग्य, रोग-निवारण, मानसिक शान्ति, आत्मविकास, बौद्धिक चेतना और आध्यात्मिक उन्नति का आधार बनाकर योग को एक विशिष्ट एवं अलौकिक परिभाषा एवं अर्थवत्ता प्रदान की है। योग के इस विलक्षण प्रभाव की अनुभूति नियमित रूप से योगाभ्यास करनेवाले साधकों को प्रत्यक्षरूपेण हो भी रही है। इन शिविरों में महर्षि पतंजलि-प्रणीत अष्टांग योग-यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि का शिक्षण-प्रशिक्षण दिया जाता है। अब व्यवस्था की जा रही है कि पतंजलि योगसूत्र के साथ-साथ हठयोग, दर्शन, उपनिषद्, वेद, चरक, सुश्रुत आदि ग्रन्थों पर आधारित उपयोगितानुसार क्रियात्मक अध्ययन, स्वाध्याय और प्रशिक्षण का भी प्रबन्ध हो। षट्कर्म- नेति, धौति, वस्ति, त्राटक, नौलि एवं कपालभाति – इन छह यौगिक क्रियाओं के साथ-साथ ध्यानयोग, जपयोग आदि का भी क्रियात्मक प्रशिक्षण देने की समुचित व्यवस्था की जा रही है।

ब्रह्मकल्प चिकित्सालय

यौगिक षट्कर्म के साथ-साथ आयुर्वेदिक पंचकर्म-[मर्दन (मालिश), स्वेदन, वमन, विरेचन, शिरोवस्ति], जड़ी-बूटियों एवं रस-रसायनों पर आधारित आयुर्वेदिक औषधियों, आहार-विहार, पथ्यापथ्य, सन्तुलित ब्रह्मचर्य, ऋतुचर्या एवं दिनचर्या, नये और पुराने रोगों का उपचार ब्रह्मकल्प चिकित्सालय के माध्यम से किया जा रहा है। एक्यूप्रेशर, योग एवं आसन, प्राणायाम का प्रशिक्षण एवं प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति का निःशुल्क

प्रशिक्षण दिया जा रहा है और औषधि न्यूनतम मूल्य पर उन्हें दी जा रही है, जो धनाभाव के कारण औषधि नहीं खरीद सकते।

ब्रह्मकल्प चिकित्सालय में उच्च रक्तचाप, मधुमेह, हृदयरोग, अस्थमा, मोटापा, एसिडिटी, एलर्जी, अल्सर, सर्वाइकल स्पोण्डोलाइटिस, सियाटिका, ऑर्थराइटिस, कैंसर (प्रथम एवं द्वितीय स्टेज) आदि पुराने एवं कष्टसाध्य रोगों का उपचार बिना शल्य-चिकित्सा (ऑपरेशन) के किया जाता है।

'पतंजलि योगपीठ' में ब्रह्मकल्प चिकित्सालय को बृहद् स्वरूप प्रदान करते हुए इसे आवासीय औषधालय का स्वरूप भी दिया जा रहा है, जिससे रोगी यहीं ठहरकर चिकित्सा-लाभ उठा सकेंगे।

पूज्य स्वामीजी महाराज का स्पष्ट कथन है कि हमें भरसक प्रयास करना चाहिए कि हम रोगी हों ही नहीं। यदि हो भी जायें तो प्रथम प्रश्रय योग को देकर योग से ही अपने को ठीक करने का प्रयत्न करना चाहिए। औषधि लेनी भी पड़े तो आयुर्वेदिक औषधियों को प्राथमिकता देनी चाहिए; क्योंकि ये हमारी मिट्टी, संस्कृति एवं प्रकृति से जुड़ी हुई एवं निरापद हैं। उसके लिए विशुद्ध रूप से निर्मित दिव्य फार्मेसी की गुणवत्तायुक्त औषधियों का होना अत्यावश्यक है। अतः सस्ती एवं गुणवत्तायुक्त औषधियाँ उपलब्ध कराने के लिए 'दिव्य योग मन्दिर ट्रस्ट' ने 'दिव्य फार्मेसी' की स्थापना आश्रम-परिसर में ही की है, जिसमें शुद्ध, गुणवत्तायुक्त, शास्त्रोक्त विधि से स्वानुभूत योग, भस्म एवं पिष्टी, स्वर्णघटित योग एवं रस, रसायन, वटी, गुग्गुल, चूर्ण, अवलेह, सत, क्वाथ, घृत, तेल, लौह, मण्डूर, पर्पटी आदि तैयार होते हैं। हमारा पूर्ण प्रयास है कि औषधि शुद्ध एवं शास्त्रीय विधि से निर्मित तथा उच्चगुणवत्तायुक्त हो। साथ ही यह भी प्रयत्न रहता है कि न्यूनतम मूल्य पर जनसामान्य को इसकी प्राप्ति सम्भव हो। हम सीमित मात्रा में ही औषधि-निर्माण कर पा रहे हैं, इस कारण कई बार लोगों को अनुपलब्धता के कारण निराश लौटना पड़ता है।

अतः शीघ्रातिशीघ्र दिव्य फार्मेसी का विस्तारीकरण करने की योजना को कार्यरूप दिया जा रहा है, जिससे आप सबकी आवश्यकता एवं हमारे प्रति जो आपकी भावना है, उसे हम पूर्ण कर सकें।

अनुसन्धान-कक्ष (Laboratory)

'दिव्य योग मन्दिर ट्रस्ट' का अपना एक अनुसन्धान-कक्ष है, जिसका कार्य परम्परागत औषधियों के अलावा नई औषधियों की खोज करना, वर्षों से अनुपलब्ध औषधियों को ढूँढ़ना, दिव्य फार्मेसी के लिए खरीदी गई वनौषधियों की गुणवत्ता की जाँच करना, शास्त्रोक्त विधि से औषध-निर्माण सुनिश्चित करना, चिकित्सा एवं फार्मेसी-जगत् में

ो रहे अनुसन्धानों और विकसित हो रही तकनीक की अद्यतन एवं सम्यक् जानकारी प्राप्त करना, आयुर्वेद पर लिखित एवं प्रकाशित साहित्य का पुस्तकालय के लिए क्रय करना, औषधीय पौधों का संरक्षण एवं संवर्द्धन करना, व्यावसायिक हितों पर चिन्तन करना तथा साहित्य तैयार कर प्रकाशित कराना है। अनुसन्धान-कक्ष ने अनेक स्वानुभूत औषधि की खोज करके तहलका मचा दिया है। सैकड़ो वर्षों से अष्टवर्ग के चार औषधीय पौधों की अनुपलब्धता के आधार पर यह मान लिया गया था कि ये पौधे प्राकृतिक कारणों से अपना अस्तित्व खो चुके हैं, लेकिन इस अनुसन्धान-कक्ष के शोध-मनीषियों ने अथक परिश्रम, गहन रुचि एवं अटूट निष्ठा का परिचय देकर हिमालय की शीतप्रधान शृंखलाओं में इन चारों विलुप्त औषधियों को ढूँढ निकाला है। अष्टवर्ग पर ट्रस्ट द्वारा अंग्रेजी एवं हिंदी में प्रकाशित पुस्तक में इस उल्लेखनीय खोज का विशद वर्णन किया गया है।

दिव्य औषध-वाटिका

हिमालय क्षेत्र-सहित देश-विदेश में पाई जानेवाली उपयोगी, दुर्लभ एवं सुलभ जीवनदायिनी जड़ी-बूटियों के परिज्ञान, संरक्षण एवं संवर्द्धन हेतु प्रारम्भ से ही आश्रम-परिसर में सार्थक प्रयास किया जा रहा है। लेकिन स्थानाभाव के कारण इसे बृहद् एवं वांछित स्वरूप प्रदान नहीं किया जा सका। अब 'पतंजलि योगपीठ' में इस कार्य हेतु पर्याप्त जमीन उपलब्ध है, अतः विशाल स्तर पर इन्हें उगाने एवं संरक्षित करने की योजना बना ली गई है। चिकित्सार्थ जिन औषधीय पौधों के ताजे पत्ते और रस की या जड़ तथा फल की जरूरत होती है, वह इस दिव्य औषध-वाटिका द्वारा निकट भविष्य में पूरी की जा सकेगी। गमलों में लगे पौधे एवं बीज बिक्री के लिए भी उपलब्ध रहेंगे।

दिव्य गोशाला की स्थापना

भारतीय नस्ल की देशी गायों का संरक्षण, संवर्द्धन तथा औषध-निर्माण में उपयोगी गो-दुग्ध, गो-घृत, गो-मूत्र, गोमय आदि की प्राप्ति हेतु गो-सेवा एवं गो-वंश की रक्षा का प्रकल्प आश्रम में पहले से चल रहा है, लेकिन अब 'पतंजलि योगपीठ' में इसे बृहत् स्वरूप प्रदान किया जा रहा है, जिसमें हजारों गायों का पालन-पोषण होगा। इनसे प्राप्त गोबर को ही कम्पोस्ट अथवा जैविक खाद बनाकर प्रयोग में लाया जायेगा, जिससे कि रासायनिक उर्वरक से रहित अन्न, फल, सब्जी, दूध उपलब्ध हो सके। गोबर से बायोगैस भी तैयार की जायेगी, जिससे आश्रम की अन्य जरूरतें पूरी हो सकेंगी। इन देशी गायों का उपयोग नस्ल-सुधार के निमित्त भी किया जायेगा, जिससे गो-वंश को प्रतिष्ठा एवं प्रामाणिकता दिलाई जा सके।

वैदिक यज्ञानुष्ठान (अग्निहोत्र)

अग्निहोत्र वस्तुतः अपने-आपमें एक विज्ञान है। पर्यावरण-शुद्धि एवं सन्तुलन बनाये रखने में, ऋतुओं को अनुकूल बनाये रखने में वनस्पति की अभिवृद्धि एवं संरक्षण के लिए, अनावृष्टि एवं अतिवृष्टि की स्थिति पर नियन्त्रण रखने के लिए, कतिपय रोगों का उपचार करने के लिए तथा धार्मिक एवं आध्यात्मिक अनुष्ठानों की प्रतिपूर्ति के लिए अग्निहोत्र का भारतीय परम्परा में विशेष स्थान रहा है। इस ऋषि-परम्परा को आदर्श मानकर आश्रम में प्रतिदिन यज्ञानुष्ठान किया जाता है। 'पतंजलि योगपीठ' परिसर में एक विशाल यज्ञशाला का निर्माण प्रस्तावित है। यज्ञ के उक्त लाभकारी बिन्दुओं पर वैज्ञानिक ढंग से शोध एवं अनुसन्धान-कार्य भी होगा।

वैदिक गुरुकुल

हरियाणा प्रान्त के रेवाड़ी शहर से लगभग ८ कि०मी० दूर किशनगढ़-घासेड़ा में वैदिक संस्कृति, संस्कार एवं उच्चादर्श एवं उन्नत, आधुनिक शिक्षायुक्त निःशुल्क विद्यातीर्थ गुरुकुल का संचालन किया जा रहा है, जिसमें उच्चवर्ग के साथ-साथ ग्रामीण एवं गरीब बच्चों को सुसंस्कार के साथ अच्छी शिक्षा प्राप्त हो सके। अभी गुरुकुल में भवन-निर्माण आदि की महती आवश्यकता है, ताकि और अधिक बच्चे शिक्षा पा सकें।

गंगोत्री-स्थित साधना-आश्रम

'दिव्य योग मन्दिर ट्रस्ट' ने जिज्ञासु साधकों की आवासीय व्यवस्था के साथ ही हिमालय-क्षेत्र में पाई जानेवाली दुर्लभ जड़ी-बूटियों के अनुसन्धान एवं संरक्षण के लिए गंगोत्री में आश्रम की स्थापना की है, जिसको अभी विस्तृत एवं बृहत् स्वरूप प्रदान करना शेष है।

पतंजलि योगपीठ की स्थापना

'पतंजलि योगपीठ', मातृसंस्था 'दिव्य योग मन्दिर ट्रस्ट', हरिद्वार की बहु-आयामी योजना है, जो लगभग एक हजार बीघा भूमि पर मूर्त रूप ग्रहण करेगा। योगपीठ वेद, योग और आयुर्वेद के प्रचार-प्रसार, प्रशिक्षण तथा अनुसन्धान के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायेगा। लगभग दो हजार साधक-साधिकाओं को यह पीठ आवासीय सुविधा प्रदान करेगा। लगभग ढाई हजार कमरों, भवनों (सभागारों) का यह विशाल परिसर बनेगा,

जिसमें फार्मेसी, अस्पताल, गोशाला, जड़ी-बूटी-उद्यान, योग-सन्देश एवं साहित्य-प्रकाशन एवं बिक्री-अनुसन्धान-विभाग, पुस्तकालय, मुद्रणालय, अन्नपूर्णा, योग-केन्द्र, यज्ञशाला आधुनिक सुविधाओं से युक्त होंगे। इस परिसर में आनेवालों को शुद्ध सात्त्विक आहार उपलब्ध होगा, जो एल.पी.जी. गैस, रासायनिक उर्वरक और कीटनाशकों से सर्वथा रहित होगा। यह परिसर विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर के शान्तिनिकेतन की तरह पूर्णतया आत्मनिर्भर एवं स्वावलम्बी संस्थान के रूप में विकसित होकर करोड़ों लोगों के लिए आरोग्य, योगाभ्यास, मानसिक शान्ति और आध्यात्मिक विकास की श्रद्धामयी तपोभूमि के रूप में लोक-विश्रुत संस्थान का स्वरूप ग्रहण कर सकेगा। सौ करोड़ रुपये की इस अत्यन्त विशाल बहुआयामी योजना को भारत के कोटिशः योगसाधक-साधिकाओं के आर्थिक सहयोग से ही पूरा करने का शिव-संकल्प स्वामी रामदेवजी ने किया है, जो परमपिता परमात्मा की असीम प्रेरणा एवं कृपा से निरन्तर पूरा होता जा रहा है।

इस योगपीठ की सदस्यता ग्रहण करने के लिए जो सहयोग-राशि ट्रस्ट ने निर्धारित की है, वह इस प्रकार है :

१.	संस्थापक सदस्य	पाँच लाख रुपये
२.	संरक्षक सदस्य	दो लाख इक्यावन हजार रुपये
३.	आजीवन सदस्य	एक लाख रुपये
४.	विशिष्ट सदस्य	इक्यावन हजार रुपये
५.	सम्मानित सदस्य	इक्कीस हजार रुपये
६.	सामान्य सदस्य	ग्यारह हजार रुपये

योग-सन्देश (मासिक पत्रिका) का प्रकाशन

'दिव्य योग मन्दिर ट्रस्ट' से जुड़े हजारों साधक-साधिकाओं द्वारा अरसे से की जा रही माँग को दृष्टिगत रखते हुए सितम्बर, २००३ ई० से अनुभवी सम्पादक-मण्डली के सम्पादन में 'योग-सन्देश' का प्रकाशन हिन्दी में शुरू किया गया। अब यह हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी, मराठी, बंगाली, पंजाबी, असमी, नेपाली, उड़िया एवं गुजराती में भी प्रकाशित हो रहा है। प्रतिमाह हजारों नये पाठकों का सदस्य बनना इसकी बढ़ती

लोकप्रियता का प्रत्यक्ष प्रमाण है। निकट भविष्य में आर्ष परम्परा से प्राप्त योग, आयुर्वेद, संस्कृति-संस्का एवं अध्यात्मवादी विचारधारा को लाखों पाठकों तक पहुँचाने का पुनीत संकल्प किया गया है। इसके अतिरिक्त, कविताएँ, जनोपयोगी लेख एवं ट्रस्ट की गतिविधियों एवं भावी योजनाओं एवं पाठकीय अनुभूतिय का भी पत्रिका में यथोचित समावेश किया जायेगा। अल्पकाल में किसी हिन्दी-पत्रिका का इस तीव्रगति से प्रसारित एवं प्रतिष्ठित होना परम पूज्य स्वामी रामदेवजी महाराज के विलक्षण प्रभाव का ही कल्याणकारी परिणाम है।

।। इतिश्री ।।

श्रद्धेय स्वामीजी का संक्षिप्त जीवनवृत्त

पूज्यपाद स्वामी रामदेवजी महाराज जन्म-जन्मान्तरों के पुण्य प्रताप से बालब्रह्मचारी, व्याकरण, आयुर्वेद सहित वैदिक दर्शनों के महान मनीषी, श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ, एवं तितिक्षु संन्यासी हैं। आप वेदों के प्रकाण्ड विद्वान्, परम तपस्वी, कर्मयोगी ऋषि, आचार्य श्री बलदेवजी महाराज गुरुकुल कालवा के शिष्य हैं। आपने ब्रह्मचर्य आश्रम से ही, पूजनीय तपस्वी अनासक्त संत श्री शंकरदेवजी महाराज से भगीरथी के पावन तट पर संन्यास दीक्षा धारण की।

अष्टाध्यायी, महाभाष्य व दर्शनोपनिषदादि ग्रन्थों को गुरुकुलों में पढ़ाया। हिमालय विचरण करते हुए गंगोत्री की पवित्र गुहाओं में तपश्चर्या व ब्रह्माराधना के द्वारा आध्यात्मिक शक्तियों का अर्जन कर हरिद्वार में अपने परम तपस्वी विद्वान् मित्रों श्रद्धेय आचार्य श्री मुक्तानन्दजी महाराज व आयुर्वेद के महान् मनीषी, गवेषक आचार्य श्री बालकृष्ण को साथ लेकर सन १९९५ में पावन तीर्थ कनखल में दिव्य योग मन्दिर (ट्रस्ट) की स्थापना कर साधना करते हुए आरोग्य, आध्यात्मिक एवं शैक्षणिक सेवा प्रकल्पों का प्रारम्भ किया।

आपके पावन सान्निध्य में आयोजित शताधिक योगसाधना एवं योग चिकित्सा शिविरों में लाखों ने असाध्य रोगों से मुक्ति व आध्यात्मिक मार्ग दर्शन प्राप्त किया है। आश्रम के आयुर्वैदिक चिकित्सा आदि सेवा कार्यों से प्रतिवर्ष लाखों लोग तन-मन का स्वास्थ्य एवं आध्यात्मिक रोशनी पा रहे हैं। हरिद्वार की पुण्य भूमि पर योग एवं आयुर्वेद की प्राचीन परम्परा के आधार पर निर्माणाधीन पतंजली योगपीठ योग आयुर्वेद चिकित्सा एवं अनुसन्धान संस्थान की स्थापना आप कर रहे हैं। वैदिक संस्कार एवं आधुनिक शिक्षा पर आधारित एक विशाल आवासीय गुरुकुल किशनगढ़ घासेड़ा का हरियाणा के रेवाड़ी जिले में संचालन कर रहे हैं। फलाहार मात्र पर आश्रित आपका तपस्वी, सरल, सहज, स्नेही, योगमय व्यक्तित्व सबकी श्रद्धा का केन्द्र है। सेवा व साधना में अहर्निशरत आप हम सबके प्रेरणा स्रोत, वन्दनीय, श्रद्धेय व अनुकरणीय हैं।

आचार्य बालकृष्ण

Price : Rs 125/-

ISBN 81-7525-497-1